CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

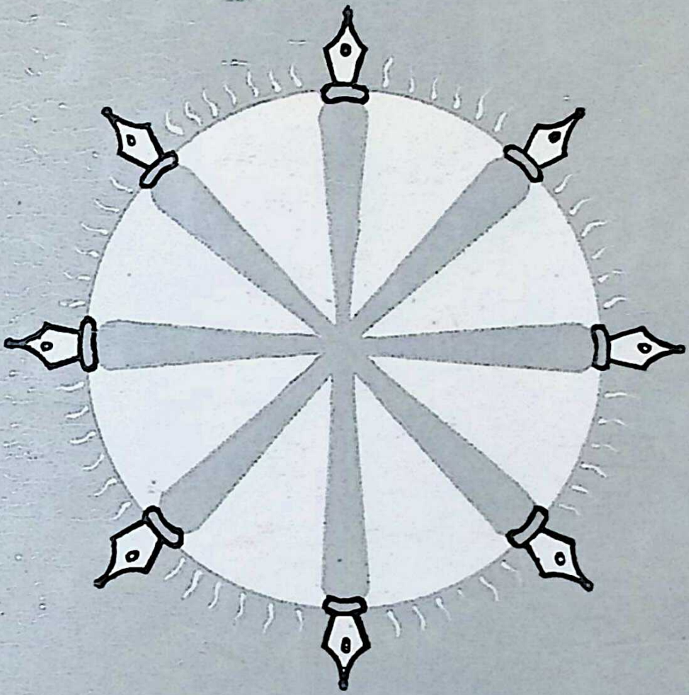

दक्खिनी भाषा और साहित्य

विश्लेषण की दिशाएं

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दक्खिनी का विकास मुख्यतः चौदहवीं से अट्ठारहवीं शताब्दी तक बहमनी, कुतुबशाही, आदिलशाही आदि सुलतानों के संरक्षण में हुआ था। यह मूलतः दिल्ली के आस-पास की खड़ीबोली थी, जो हरियाणवी, ब्रज, अवधी तथा पंजाबी से रंगी हुई थी। दक्षिण में आ कर इसने मराठी, तेलुगु, कन्नड़, मलयालम आदि भाषाओं के रूपों को अपने आँचल में समेट लिया। इसके साथ ही इसने अरबी फारसी, तुर्की, पुर्तगाली आदि भाषाओं के शब्दों को बड़ी उदारता से ग्रहण किया। इस दृष्टि से यह एक विशिष्ट भाषा के रूप में उभर कर आई। लेकिन इसने अपने मूल स्वरूप को अक्षुण्ण बना रखा, भले ही इसके कवियों और लेखकों ने अरबी-फ़ारसी लिपि का प्रयोग किया है। यही कारण है कि इसे कुछ विद्वान दक्खिनी हिन्दी की संज्ञा देते है और कुछ इसे दक्खिनी उर्दू के नाम से पुकारते हैं। इस पुस्तक में उर्दू हिन्दी विवाद से हटकर स्वतंत्र भाषा मान कर इसे दक्खिनी नाम ही दिया गया है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

श्रद्धेय
प्रो. विद्यानिवास मिश्र
को
सादर

[illegible]
4/5/[illegible]

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दक्खिनी भाषा और साहित्य
विश्लेषण की दिशाएँ

संपादक

डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी

डॉ. (श्रीमती) सरोज अग्रवाल

प्रकाशक

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान

दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दक्खिनी भाषा और साहित्य
विश्लेषण की दिशाएँ

संपादक : डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी
डॉ. (श्रीमती) सरोज अग्रवाल

संस्करण : मार्च, 1991

प्रकाशक : उच्च शिक्षा और शोध संस्थान
दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, मद्रास

मुख्य वितरक : नेशनल पब्लिशिंग हाउस,
23, दरिया गंज, नई दिल्ली–110002

मूल्य : 70 रुपए

मुद्रक : दक्षिण भारत प्रेस,
खैरताबाद, हैदराबाद–500 004.

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अनुक्रमणिका

संपादकीय

दो शब्द

संगोष्ठी प्रतिवेदन

दक्खिनी भाषा और साहित्य (आधारपत्र) –प्रो. कृष्णकुमार गोस्वामी 9

1. दक्खिनी भाषा : सैद्धांतिक और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य –डॉ. परमानंद पांचाल 13
2. दक्खिनी हिन्दी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि –डॉ. वेदप्रकाश शास्त्री 22
3. दक्खिनी के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सूफी साहित्य का उद्गम और विकास –डॉ. विमला मदान 34
4. दक्खिनी के ऐतिहासिक काव्य और अलीनामा –डॉ. सुरेशदत्त अवस्थी 46
5. दक्खिनी हिन्दी के रूपक-कथा-काव्य –डॉ. नूरजहाँ बेगम 58
6. दक्खिनी काव्य में भारतीय तत्व –प्रो. अशरफ रफ़ी 66
7. दक्खिनी गद्य का विकास –डॉ. बालकिशन शर्मा 'रोहिताश्व' 76
8. दक्खिनी मुहावरे –प्रो. एस. आर. कुलकर्णी 95
9. दक्खिनी में वैज्ञानिक साहित्य –डॉ. अफ़ज़ुलुद्दीन इकबाल 103
10. दक्खिनी पर तेलुगु का प्रभाव –डॉ. विजयराघव रेड्डी एवं डॉ. शकुंतला रेड्डी 110
11. हिन्दी और दक्खिनी की पद संरचना : एक तुलनात्मक अनुशीलन –प्रो. वें. वेंकट रमणराव 131
12. 'मसनवी कदमराव पदमराव' की भाषा –डॉ. वी. पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर 139
13. नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि के नाटकों की भाषा-शैली –प्रो. भीमसेन निर्मल 156

संदर्भ ग्रंथ

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हमारे

कुलपति

माननीय श्री पी. वी. नरसिंहराव

को

सादर

समर्पित

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

संपादकीय

भारत बहुभाषी, बहुजातीय और बहुसांस्कृतिक देश है किंतु उसमें भारतीयता अनवरत रूप से एक साथ प्रवाहित होती है। इसलिए यह आवश्यक हो जाता है कि भारत की इन भाषाओं और साहित्य का अध्ययन किया जाए ताकि उनमें सार्वभौमिक तत्वों की खोज हो सके जो भारत को एक सूत्र में बाँधने में सहायक हैं। इसी संदर्भ में दक्षिण भारत में प्रयुक्त दक्खिनी भाषा और उसके साहित्य का मूल्यांकन करने के लिए 31 मार्च और 1 अप्रैल, 1989 को 'दक्खिनी भाषा और साहित्य : विश्लेषण की दिशाएँ' विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया। वास्तव में दक्खिनी के ऐतिहासिक और सैद्धांतिक परिप्रेक्ष्य में काफी शोध कार्य हुआ है जिनमें डॉ. श्रीराम शर्मा का नाम उल्लेखनीय है हालांकि पं. राहुल सांस्कृत्यायन. डॉ. बाबूराम सक्सेना आदि ने भी इस विषय पर अपनी लेखनी उठाई है। डॉ. शर्मा ने 'दक्खिनी हिन्दी का साहित्य', 'दक्खिनी का उद्भव और विकास', 'दक्खिनी का पद्य और गद्य', 'अली आदिल शाह का काव्य संग्रह', 'सबरस' आदि ग्रंथों के आलोचनात्मक अध्ययन से दक्खिनी भाषा और साहित्य में अत्यधिक योगदान किया है। इसके अतिरिक्त देवीसिंह चौहान, मसूद हुसैन खां, ज्ञानचंद जैन नसीरुद्दीन हाशमी, सईदा जाफर, जीनत साजदा, परमानंद पांचाल, विमला मदान, वदही हुसैनी आदि के नाम भी दक्खिनी भाषा और साहित्य के संदर्भ में विशेष स्थान रखते हैं। विदेशी विद्वानों में अमेरिका की रूथ लैला श्मिट तथा जापान के ताकाहाशि अकिरा के दक्खिनी हिन्दी या उर्दू के भाषा विश्लेषण पर किए गए अनुसंधान कार्य को विस्मृत नहीं किया जा सकता। किंतु अभी भी दक्खिनी का विशाल साहित्य अनछुआ पड़ा है जिस पर शोधार्थियों और विद्वानों का ध्यान नहीं गया है। यह संगोष्ठी एक प्रेरक तत्व है जिसमें दक्खिनी भाषा और साहित्य के विविध पक्षों का उद्घाटन और मूल्यांकन करने का प्रयास किया गया है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रस्तुत पुस्तक संगोष्ठी में पढ़े गए आलेखों का संकलन है। इसमें एक आलेख 'मसनवी कदमराव पदमराव की भाषा' को जोड़ा गया है, जिसके लिए डॉ. वी. पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर से विशेष अनुरोध किया गया था। इसके लिए डॉ. मेत्तर के प्रति आभार प्रकट करना हमारा कर्तव्य है। इसके अतिरिक्त इस कार्य में मुझे अपने शोध छात्रों श्री मोहम्मद सादिक और श्री रियाजुद्दीन से भी काफ़ी सहायता मिली जिन्होंने प्रो. अशरफ़ रफ़ी और डॉ. अफजलुद्दीन इकबाल के उर्दू में लिखे आलेखों का हिन्दी रूपांतरण किया। इस दोनों छात्रों को आशीर्वाद देते हुए मुझे हार्दिक प्रसन्नता हो रही है।

संगोष्ठी के कार्यक्रम को सफल बनाने में मेरे सहयोगी डॉ. देवेन्द्र शुक्ल और डॉ. (श्रीमती) सरोज अग्रवाल का काफी सहयोग रहा है। मैं इन दोनों सहयोगियों का हार्दिक धन्यवाद करता हूँ।

अंत में संस्थान उन सब विद्वानों का आभारी है जिन्होंने इस संगोष्ठी में सक्रिय भाग लिया और आलेख प्रस्तुत किया।

कृष्णकुमार गोस्वामी

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दो शब्द

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा भाषायी संचेतना जागृत करने के साथ-साथ साहित्यिक आलोचना में अग्रसर है। संस्थान हिन्दी के व्यावहारिक और प्रकार्यात्मक पक्षों पर पुस्तकें प्रकाशित कर रहा है जिनमें हिन्दी भाषा की सामाजिक भूमिका, व्यावसायिक हिन्दी, कोश विज्ञान आदि पुस्तकों के साथ-साथ शैलीविज्ञान और अनुवाद संबंधी पुस्तकों का प्रकाशन भी है। साहित्य के तुलनात्मक और समीक्षात्मक अध्ययन पर संस्थान का विशेष ध्यान रहा है। अतः "तुलनात्मक साहित्य की भूमिका" और "जयशंकर प्रसाद : मूल्यांकन और मूल्यांकन" पुस्तकों को हिन्दी साहित्य जगत में सम्मान प्राप्त हुआ है।

संस्थान में समय-समय पर संगोष्ठियों का आयोजन होता रहता है और उन संगोष्ठियों में पढ़े गए आलेखों का संकलन भी प्रकाशित किया जाता है। इसी शृंखला की एक कड़ी के रूप में प्रस्तुत पुस्तक "दक्खिनी भाषा और साहित्य : विश्लेषण की दिशाएँ" आपके हाथों में है। इस विषय पर सामग्री तो अधिक है लेकिन इस पर अभी बहुत शोध कार्य करने की आवश्यकता है। इस संगोष्ठी के पीछे यही प्रेरणा थी और पढ़े गए आलेखों को प्रकाशित करने की योजना भी थी।

प्रकाशन की भावी योजना के साथ यह कहना भी असमीचीन न होगा कि संस्थान में हिन्दी के विभिन्न पक्षों पर पुस्तकें प्रकाशित की जा रही हैं। इसके साथ हमारी यह भी कामना है कि नवीन विषयों से संबंधित पुस्तकों का लेखन, अनुवाद और प्रकाशन संस्थान के द्वारा होता रहे।

जिन विद्वान प्रतिभागियों ने इस संगोष्ठी में भाग लिया और सहयोग मिला, उनके प्रति संस्थान कृतज्ञता प्रकट करता है। इस सर्जनात्मक प्रयास में संपादकद्वय को बधाई देना अपना पुनीत कर्तव्य समझता हूँ।

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान
मद्रास–600 017.

वेमूरि आंजनेय शर्मा
कुलसचिव

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

संगोष्ठी प्रतिवेदन

उच्च शिक्षाऔर शोध संस्थान, दक्षिण भारत हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद के तत्वावधान में 31 मार्च एवं 1 अप्रैल, 1989 को "दक्खिनी भाषा और साहित्य : विश्लेषण की दिशाएँ" विषय पर संगोष्ठी का आयोजन किया गया। उद्घाटन सत्र में अतिथियों का स्वागत करते हुए संस्थान के प्रोफेसर एवं अध्यक्ष डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी ने बताया कि दक्खिनी भाषा का उद्भव और विकास 13 वीं सदी में हुआ। उस दौरान काफी साहित्य सृजन भी हुआ। इसके मुख्य केंद्र बीजापुर, गोलकोंडा, गुलबर्गा और औरंगाबाद रहे हैं। इसी कारण इस भाषा में अरबी-फ़ारसी के अतिरिक्त तेलुगु, कन्नड़ एवं मराठी का प्रभाव रहा है हालांकि इसका मूलाधार उत्तर की खड़ीबोली रही है। 13-14 वीं शताब्दी में मोहम्मद तुगलक द्वारा दौलताबाद को राजधानी बनाने के कारण सेना में गए बहुत से लोग वहाँ आकर बस गए और इस प्रकार दक्खिनी भाषा का विकास हुआ।

डॉ. गोस्वामी ने बताया कि इस संगोष्ठी का नाम "दक्खिनी हिन्दी" या "दक्खिनी उर्दू" न रखकर "दक्खिनी भाषा और साहित्य" इसलिए रखा कि इससे जुड़े हिन्दी या उर्दू के विवाद से इसे बचाया जा सके। इस संगोष्ठी का उद्देश्य दक्खिनी भाषा और साहित्य पर हुए कार्यों का पुनर्मूल्यांकन करना है और उन पक्षों को उजागर करना है जो अभी तक प्रकाश में नहीं आए।

संगोष्ठी का उद्घाटन करते हुए सालारजंग संग्रहालय के निदेशक डॉ. मोहनलाल निगम ने "दक्खिनी भाषा" नाम पर अपनी सहमति देते हुए कहा कि इस भाषा को समझने के लिए महाराष्ट्र के संतों को पढ़ना और समझना अत्यंत आवश्यक है जिससे कि दक्खिनी में आए आध्यात्मिक शब्दों को समझा जा सके। विशिष्ट अतिथि उस्मानिया विश्वविद्यालय के प्रो. भीमसेन निर्मल ने बताया कि दक्खिनी साहित्य न केवल अरबी–फारसी

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri
लिपि में ही लिखा हुआ है, अपितु यह तेलुगु और तमिल में भी रचा गया है। यह भाषा तेलंगाना, गुलबर्गा, औरंगाबाद में अपना केन्द्र बनाकर पनपी और बाद में इसका नाम रेख्ता, रेख्ती आदि पड़ा। कालांतर में खड़ीबोली का विकास यहीं से पाया जाता है। इंदिरा गाँधी राष्ट्रीय मुक्त विश्वविद्यालय के हिन्दी परामर्शदाता डॉ. परमानंद पांचाल ने बताया कि उत्तर भारत की ग्रामीण आंचल में बोली जाने वाली भाषा ही दक्षिण में साहित्यिक भाषा बनी।

उद्घाटन सत्र के अध्यक्ष और संस्थान कुलसचिव श्री वेमूरि आंजनेय शर्मा ने कहा कि "दक्खिनी भाषा" दक्षिण में जनसमुदाय की भाषा रही है और इस पर तेलुगु का काफी प्रभाव पड़ा है। अंत में संगोष्ठी की संयोजिका डॉ. सरोज अग्रवाल ने धन्यवाद ज्ञापन किया।

संगोष्ठी का प्रथम सत्र उस्मानिया विश्वविद्यालय की प्रो. डॉ. सैयदा-जाफर की अध्यक्षता में संपन्न हुआ। डॉ. परमानंद पांचाल ने अपने आलेख में बताया कि दक्खिनी मूलत: उत्तर से आई खड़ीबोली और हरियाणवी का ही विकसित रूप है और बाद में यह दक्षिण से पुन: दिल्ली लाई गई जो अपने साहित्यिक रूप में दिल्ली आकर फिर से प्रतिष्ठित हो गई। इसका श्रेय दक्षिणपद के लोगों को ही मिलता है। आपने बताया कि दक्खिनी हिन्दी दक्षिणी हिन्दी नहीं बल्कि "दक्कन" क्षेत्र विशेष की भाषा है। इस का इतिहास में एक महत्वपूर्ण स्थान है। समग्र रूप में आपने "दक्खिनी हिन्दी" को हिन्दी का वह रूप माना है जिसका विकास प्राय: चौदहवीं सदी से अठारहवीं सदी तक दक्षिण के बहमनी, कुतुबशाही आदि राज्यों के सुल्तानों के संरक्षण में हुआ। यह मूलत: दिल्ली के आसपास की हरियाणवी एवं खड़ीबोली ही थी जिस पर ब्रज, अवधी, तथा पंजाबी के साथ मराठी, सिंधी, गुजराती की सहवर्ती भाषा अर्थात तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम आदि का प्रभाव पड़ा था और इसमें अरबी, तुर्की, पुर्तगाली आदि विदेशी भाषाओं के शब्द भंडार प्रचुर मात्रा में ग्रहण किए गए थे। इसके लेखक और कवि अधिकतर मुसल-मान थे। इसे संसार की सबसे अधिक मिश्रित भाषा कहा जा सकता है।

दक्खिनी साहित्य की विदुषी डॉ. विमला मदान ने 'सूफी साहित्य के उद्गम और विकास" पर आलेख प्रस्तुत किया। आपने "सूफ़ी" शब्द के उद्गम

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

और विकास पर विभिन्न मत प्रकट करते हुए यह बताया कि सूफियों पर ईरान में किस प्रकार का प्रभाव था और दक्षिण भारत में किस प्रकार का । डॉ. मदान ने यह भी बतलाया कि भारत में सूफी काव्यधारा पर शंकराचार्य के अद्वैतवाद एवं उपनिषद् का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित होता है । डॉ. वेदप्रकाश शास्त्री ने एक नई संकल्पना दी और सप्रमाण बताया कि इसका संबंध उत्तर की आर्य भाषा से है । डॉ. विद्यासागर जी ने भी दक्खिनी को दक्किनी भाषा मानते हुए कहा कि ब्रज, अवधी आदि अनेक भाषा के योग से यह संपुष्ट हुई है । अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ. सैयदा जाफर ने बतलाया कि दक्खिनी भाषा में हिन्दुस्तानी तत्व प्रचुर मात्रा में मिलते हैं । राम, कृष्ण, गंगा, यमुना आदि शब्द पौराणिक महत्व को अक्षुण्ण बनाए हुए हैं ।

द्वितीय सत्र केन्द्रीय हिन्दी संस्थान के प्रोफेसर एवं प्रभारी डॉ. कृष्णकुमार शर्मा की अध्यक्षता में संपन्न हुआ । डॉ. सुरेशदत्त अवस्थी ने अपने आलेख में दक्खिनी के ऐतिहासिक काव्यों पर अपने विचार व्यक्त किए । उन्होंने तीन ऐतिहासिक काव्यों (फिरदौसी हसन अली का "फतहनामा", निज़ाम शाह का "इब्राहिमनामा" और कवि नुसरती का "अलिनामा") को अपने आलेख का मुख्याधार बनाया । ऐतिहासिक काव्य एवं ऐतिहासिक वीर काव्य का अंतर बताते हुए मुख्य रूप से एक बात यह कही कि "अलिनामा" में बीजापुर के 15 वर्षों का इतिहास है । तत्पश्चात् डॉ. नूरजहाँ बेगम ने "दक्खिनी काव्य में रूपक कथा काव्य" पर अपना आलेख प्रस्तुत करते हुए कहा कि प्रकृति से लिए गए प्रतीकों के माध्यम से लौकिक कथा द्वारा अलौकिक प्रेम की अभिव्यंजना मिलती है । साथ ही आपने यह भी बतलाया कि सभी लौकिक प्रेम काव्य अध्यात्म के रंग में रंगे हुए नहीं है । अपने अध्यक्षीय भाषण में प्रो. कृष्ण कुमार शर्मा ने कहा कि दक्खिनी भाषा को समृद्ध बनाने में राजस्थानी का योगदान भी कम नहीं है ।

तृतीय सत्र हैदराबाद विश्वविद्यालय के हिन्दी विभाग के अध्यक्ष प्रो. वेंकट रमणराव की अध्यक्षता में हुआ । इसमें डॉ. अफ़ज़लुद्दीन इकबाल

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ने "दक्खिनी भाषा में वैज्ञानिक तत्वों को" प्रस्तुत किया। सूर्यग्रहण, चंद्रग्रहण आदि अनेक वैज्ञानिक तत्व इस साहित्य की अमूल्य निधि हैं। आपने यह भी बताया कि मद्रास में फोर्टसेंट जार्ज कालेज में अन्य भाषाओं के अतिरिक्त दक्खिनी पर भी कार्य हुआ है। प्रो. एस. आर. कुलकर्णी ने "दक्खिनी की कहावतें" पर महत्वपूर्ण लेख पढ़ते हुए सप्रमाण यह बताया कि दक्खिनी की इन कहावतों का मराठी से कितना साम्य है। डॉ. अशरफ रफ़ी ने "दक्खिनी काव्य में हिन्दुस्तानी तत्वों" पर आलेख पढ़ते हुए बताया कि दक्खिनी भाषा भारतीय तत्वों से ओतप्रोत है। बादशाह को "इंद्र" व काम को "अशरीर" माना है। साथ ही यह भी बताया कि रामायण और महाभारत न केवल मसनवी में है अपितु अन्य छंदों में भी लिखे गए हैं। डॉ. वेंकट रमणराव ने अपने अध्यक्षीय भाषण में दक्खिनी में उर्दू और हिन्दी दोनों की अस्मिता को स्वीकार किया।

चतुर्थ सत्र हिन्दी प्रचार सभा, नामपल्लि, हैदराबाद के प्रधानमंत्री प्रो. राजकिशोर पांडेय की अध्यक्षता में संपन्न हुआ जिसमें डॉ. बाल-किशन शर्मा "रोहिताश्व" ने दक्खिनी गद्य के विविध पक्षों पर चर्चा करते हुए उसमें निहित लोक वार्ताओं की चर्चा की। डॉ. वेंकट रमणराव ने "हिन्दी एवं दक्खिनी हिन्दी की पदरचना" पर आलेख प्रस्तुत करते हुए विभिन्न व्याकरणिक कवियों का विश्लेषण किया। डॉ. विजयराघव रेड्डी ने "दक्खिनी पर तेलुगु का प्रभाव" आलेख में बताया कि दक्खिनी सरलीकरण की प्रक्रिया है। आपने पिजिन एवं क्रियोल के स्वरूप को स्पष्ट करते हुए इसे "क्रियोल" बताया। अंत में अपने अध्यक्षीय भाषण में डॉ. पांडेय ने दक्खिनी की उपादेयता बतलाते हुए उसके भाषापरक अध्ययन पर बल दिया।

संगोष्ठी के समापन सत्र में आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय के पूर्व मुख्य न्यायाधीश श्री गोपालराव एकबोटे ने मुख्य अतिथि के रूप में यह वक्तव्य दिया कि हिन्दी को संविधान में राजभाषा का दर्जा दिया गया है लेकिन खेद है कि हम उसका पालन नहीं कर रहे हैं। इस दिशा में दक्खिनी हमें बहुत सहयोग दे सकती है। अध्यक्षीय भाषण में डॉ. परमानंद पांचाल ने यह

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

बताया कि दक्खिनी न हिन्दी की है न उर्दू की। यह एक स्वतंत्र भाषा है। यह साहित्यिक भाषा थी पर अब बोली के रूप में रह गई है। अतिथियों का स्वागत डॉ. देवेन्द्र शुक्ल ने किया। अंत में संगोष्ठी निदेशक प्रो. कृष्ण कुमार गोस्वामी ने धन्यवाद ज्ञापन के साथ संगोष्ठी की समाप्ति की घोषणा की।

इस संगोष्ठी की विशेषता यह रही है कि इसमें हिन्दी, उर्दू, मराठी और तेलुगु के विद्वानों ने सक्रिय भाग लिया जिससे दक्खिनी के स्वरूप-निर्धारण में काफी सहायता मिली।

संपादकद्वय

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दक्खिनी भाषा और साहित्य

प्रो. कृष्णकुमार गोस्वामी

दक्खिनी उस बोली को कहते हैं जो आज दक्षिण भारत के काफी बड़े क्षेत्र में बोली जाती है। इसका विकास 13–15 वीं शताब्दी में गंगा–यमुना दोआब में बोली जाने वाली आर्य भाषा से हुआ है। साहित्यिक भाषा के रूप में इसका विकास 15वीं शताब्दी से 17वीं शताब्दी तक हुआ। मुसलमान शासकों की छत्रछाया में मुसलमान कवियों ने 200 वर्षों में साहित्य सृजन किया। शेष 700 वर्षों के इतिहास में यह सेना और बाज़ार की संपर्क भाषा (लिंग्वाफ्रैंका) के रूप में रही और उन मुसलमानों की घरेलु पेटुआ (भाषा) के रूप में रही जो दक्षिण में पीढ़ियों तक रहे। इस समय भी यह वही प्रकार्य अपनाए हुए है लेकिन अब यह भाषा केवल मुसलमानों तक सीमित नहीं है वरन् अन्य समुदायों में भी बोली जाती है। दक्खिनी भाषी औपचारिक अवसरों पर उत्तर भारत की सामान्य हिन्दी या उर्दू का प्रयोग करते हैं लेकिन परस्पर संप्रेषण के लिए दक्खिनी का प्रयोग करते हैं।

दक्खिनी का उदय और विकास कैसे हुआ, उस पर संक्षिप्त विवेचन करना असमीचीन न होगा। 13 वीं शताब्दी के अंत में अलाऊद्दीन खिलजी ने देवगिरि और वरंगल पर विजय प्राप्त की। बाद में गियासुद्दीन तुगलक और मुहम्मद तुगलक का राज्य आया। 1327 ई. में मोहम्मद तुगलक ने दिल्ली से देवगिरि को (जिसे बाद में दौलताबाद कहा गया) राजधानी बनाने का आदेश दिया और अपनी जनता को वहाँ ले आया, लेकिन बाद में उसे दिल्ली लौटना पड़ा। उसके अमीरों ने विद्रोह किया और अब्बूल मुज़फ्फ़र अलाऊद्दीन बहमन शाह के नेतृत्व में अपने-आप को स्वतंत्र घोषित किया। बहमनी राज्य ने पहले गुलबर्गा और बाद में बीदर को अपनी राजधानी बनाया जो 16 वीं शताब्दी तक रही।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

वास्तव में खिलजी और तुगलक शासकों के समय जो मुसलमान और हिन्दु दक्षिण में आए वे अपनी बोली को भी साथ लाए। इनमें बहुत बड़ी संख्या दिल्ली के आस-पास के लोगों की थी जिनकी मातृभाषा मुख्यतः खड़ीबोली थी। धर बहमनी राज्य में राजभाषा के रूप में फारसी थी और फारसी साहित्य का ज्ञान प्राप्त करना उनके लिए सरल नहीं था। सामान्य जन-जीवन के साथ संपर्क बनाए रखने के लिए उत्तर भारत से आए लोग दक्षिण की तेलुगु, मराठी और कन्नड़ भाषाओं से परिचित नहीं थे, इसलिए उन्हें अपनी अभिव्यक्ति के लिए एक माध्यम चाहिए था और वह माध्यम बनी उनकी दक्खिनी बोली जो पिजिन के रूप में उद्भूत होकर क्रियोल के रूप में विकसित हुई। इस बोली में फ़ारसी, संस्कृत और दक्षिण की क्षेत्रींय बोलियों का प्रभाव तो रहा ही, साथ में अवधी और ब्रज का साहित्य भी आया। लेकिन रोचक तथ्य यह मिलता है कि दक्खिनी में फारसीकरण की जितनी प्रवृत्ति अधिक मिलती है वह दिल्ली के आस-पास की बोली में उतनी नहीं मिलती। इसका प्रभाव विदेशी मुसलमानों (अफ़गानी, ईरानी और तुर्की) के आने से हुआ जो मुख्यतः बहमनी राज्य के दौरान आए थे। इस प्रकार दक्खिनी ने उत्तर भारत की खड़ीबोली हिन्दी या उर्दू से अपना अलग रूप बना लिया हालांकि यह स्वीकार किया जाता है कि पूर्वी पंजाब और पश्चिमी उत्तर प्रदेश में जो बोलियाँ बोली जाती हैं उन्हीं से इसका विकास हुआ है। सुनीतिकुमार चट्टर्जी ने इन बोलियों का स्रोत शौरसेनी अपभ्रंश माना है और इस दृष्टि से दक्खिनी का स्रोत भी शौरसेनी अपभ्रंश माना जा सकता है। इसी बात की पुष्टि मोहिउद्दीन कादिरी "जोर" ने भी की है कि इसमें पंजाबी और खड़ीबोली की जो समानता मिलती है वह इसी स्रोत के कारण है लेकिन दक्षिण में आकर इसने नया रूप धारण कर लिया।

15वीं शताब्दी के अंत में गोलकुंडा ने अपनी स्वतंत्रता घोषित कर ली और 16वीं शताब्दी के प्रारंभ में बहमनी राज्य खंडित हो गया। गोल-कुंडा में विभिन्न स्थानों से लोग आकर बस गए और गोलकुंडा एक विश्व नगर (Cosmopolitan) बन गया था। कुली कुतुबशाह का राज्य स्थापित हुआ और 17 वीं शताब्दी तक रहा। इसी के साथ बीजापुर में आदिलशाही

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

शासन था । इन दो सौ वर्षों में दक्खिनी साहित्यिक भाषा के रूप में प्रस्फुटित हो कर आई । गोलकुंडा की राजभाषा फारसी थी लेकिन कुतुबशाही राजा तेलुगु और दक्खिनी के भी संरक्षक रहे । मुहम्मद कुली कुतुब शाह (चौथे) स्वयं कवि थे और उनके राज्य में मुल्ला वजही ने दक्खिनी में साहित्य रचना की जिनमें "कुत्ब-ओ-मुश्तरी" और "सबरस" उल्लेखनीय है । पहले तो दक्खिनी की शब्दावली और भाव भारतीय थे लेकिन बाद में उनका फारसीकरण होता गया जैसे कि उत्तर भारत में उर्दू के साथ हुआ है ।

17वीं शताब्दी के अंत में औरंगज़ेब के आक्रमण के बाद हैदराबाद निजाम राज्य के अंतर्गत आ गया । इस समय राजनैतिक उथल-पुथल रही जिस से साहित्य रचना को आघात पहुँचा । 1880 में उर्दू निज़ाम राज्य की राजभाषा हुई लेकिन इस भाषा में अधिक काम के रिकार्ड नहीं मिलते । ग्रियर्सन ने अपने सर्वेक्षण में कहा है कि दक्षिण भारत में मुसलमान हिन्दुस्तानी के एक रूप दक्खिनी का प्राय: प्रयोग करते थे । 1919 में उस्मानिया विश्वविद्यालय की स्थापना के बाद उर्दू को शिक्षा माध्यम के रूप में अपनाया गया लेकिन यह विवाद का विषय बना रहा कि दिल्ली की उर्दू अपनायी जाए या यहाँ की दक्खिनी को, क्योंकि दोनों स्थानों की संस्कृतियों में काफी अंतर है ।

दक्खिनी का क्षेत्र मुख्यत: आंध्र प्रदेश का तेलंगाना क्षेत्र, महाराष्ट्र का औरंगाबाद और कर्नाटक का गुलबर्गा तथा बीजापुर क्षेत्र हैं । इस प्रकार दक्खिनी प्रदेश से तात्पर्य समस्त दक्षिण भारत से नहीं है । इस प्रदेश की गोदावरी और कृष्णा दो प्रमुख नदियाँ हैं । वास्तव में दक्खिनी उत्तर और दक्षिण तथा आर्य और द्रविड़ संस्कृतियों का संगम क्षेत्र है । इसी कारण तेलुगु, मराठी और कन्नड़ के अनेक भाषायी तत्व इसमें आकर समाहित हो गए हैं । हैदराबादी दक्खिनी पर मानक भाषा का अधिक प्रभाव मिलता हैं । इस प्रकार 14वीं शताब्दी से 20वीं शताब्दी तक दक्खिनी ने सामाजिक, सांस्कृतिक, आर्थिक और राजनैतिक आदि विभिन्न पक्षों को झेला और अपनी अलग विशेषता या सत्ता प्राप्त की ।

दक्खिनी का नामकरण भी विचित्र रूप लिए हुए है । कई विद्वानों ने इसे दक्खिनी हिन्दी-नाम दिया है और कुछ ने दक्खिनी उर्दू या कदीम उर्दू का

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

नाम दिया है, लेकिन इस विवाद से बचने के लिए कई विद्वानों ने इसे केवल "दक्खिनी" की संज्ञा दी है। इसी विवाद से बचते हुए हमने भी अपनी इस संगोष्ठी को "दक्खिनी" का ही नाम दिया है।

दक्खिनी का पद्य और गद्य में लिखा गया साहित्य बहुत ही व्यापक है। इसमें सूफी साहित्य, आख्यानक काव्य, प्रेमाख्यानक काव्य, भक्ति साहित्य, भावात्मक काव्य और कथात्मक काव्य मिलता है। इसमें मीरांजी शम्सुल उश्शाक, बुराहनुद्दीन जानम, फीरोज बीदरी, निजामी, फीरोजी, नुस्रती, मुल्ला वजही, नव्वासी, इब्ने नशाती, मीरां हाश्मी, शाह अबुल हसन कादरी, शाह अमीनुद्दीन आला, काजी महमूद बहरी, मुल्ला वली, शाह मियाँ तुराब, फ़ायज, शाहतुराब दकनी, हातिम दकनी, वजही, नूरे दरिया कादरी, पुरुषोत्तम के नाम उल्लेखनीय हैं। इसके साथ-साथ इन महान रचनाकारों की सबरस, फूलबन, अलीनामा, गुलशने इश्क पिरतनामा, इर्शादनामा, पंछीनामा, कुल्लियातवली आदि अनेक कृतियों का संपादन एवं विवेचन हुआ है।

इस संगोष्ठी में हमारा उद्देश्य दक्खिनी भाषा और साहित्य के परिचित पक्षों का पुनर्मूल्यांकन करना और अपरिचित पक्षों को उद्घाटित करना है क्योंकि दक्खिनी ने अपना अस्तित्व बना लिया, जैसा कि अन्य भाषाएँ अपनी साहित्यिक परंपरा में अपना महत्वपूर्ण स्थान बनाए हुए हैं।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दक्खिनी भाषा : सैद्धांतिक और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य

डॉ. परमानंद पांचाल

दक्खिनी मूल रूप में उत्तर से आई खड़ीबोली और हरियाणा का ही विकसित रूप है, जो दिल्ली और उसके आस-पास के क्षेत्रों में बोली जाती थी। आज से लगभग चार-पांच सौ वर्ष पहले की उत्तरी भारत की इस बोली को ही दक्कन में ऐतिहासिक कारणों से साहित्यिक रूप प्राप्त हुआ था। आज उत्तर के ग्रामीण क्षेत्रों की जिस बोली को हम गंवार भाषा कहते हैं, एक प्रकार से उसी का साहित्यिक रूप 'दक्खिनी' है।

1945 के गज़ेटियर ऑफ इंडिया में इसके संबंध में स्पष्ट रूप से कहा गया है कि The form of old Hindi speech to Deccan come to be known as 'Dakhini', the speech of the South अर्थात् दक्कन में ले जाई गई पुरानी हिन्दी ही दक्खिनी है। सुप्रसिद्ध भाषा-विज्ञानी डॉ. मसूद हुसैन खां ने ठीक ही लिखा है, "कदीम दक्खिनी को अगर किसी बोली से निस्बत हो सकती है तो वह दिल्ली के नवाह की दो बोलियाँ यानी खड़ी और हरियाणी हैं, जिनकी क़दामत पर शुबा करना तारीखी नजर से सरासर गलत है।" हिन्दी भाषाविज्ञानी डॉ. उदयनारायण तिवारी ने इसे और स्पष्टता प्रदान करते हुए लिखा है, "दक्खिनी हिन्दी, दक्षिण में ले जाई गई दिल्ली की बोली है, जो बाद में अपने साहित्यिक रूप में दिल्ली में आकर फिर प्रतिष्ठित हो गई।"

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सच पूछिए तो खड़ीबोली को उंगली पकड़कर साहित्य में चला सिखाने वाले ये 'दाक्षिणात्य' ही थे। इन्हीं के योगदान से आज की राष्ट्र-भाषा और राजभाषा का यह पूर्व रूप स्थिर हुआ था। महापंडित राहुल सांस्कृत्यायन के शब्दों में, "खड़ीबोली हिन्दी के सर्वप्रथम कवि ये दक्खिनी के कवि ही थे।"

दक्खिनी क्या है ?

बहुधा यह प्रश्न उठता है कि दिक्खिनी क्या है ? शाब्दिक दृष्टि से 'दक्खिनी हिन्दी' का अर्थ दक्खिन अर्थात् 'दक्षिण की हिन्दी' होता है, किंतु इतना कह देने मात्र से ही इस भाषा का ठीक-ठीक बोध नहीं हो जाता। दक्खिनी हिन्दी 'दक्षिणी हिन्दी' नहीं है। दक्खिन या 'दक्कन' शब्द इतिहास में अपना एक महत्वपूर्ण स्थान रखता है। पुरानेकाल में "दक्षिणापथ" शब्द का प्रयोग मिलता है। विन्ध्याटवी से दक्षिण की ओर जाने वाले मार्ग के लिए इस शब्द का प्रयोग किया जाता था। गुप्तकाल में नर्मदा से कन्याकुमारी तक की भूमि 'दक्षिणापथ संघ' मानी जाती थी। परंतु विगत पांच छह शताब्दियों में 'दक्कन' का क्षेत्र जितना सीमित रहा है, उतना पहले कभी नहीं था।

'दक्कन' वास्तव में एक विशेष क्षेत्र रहा है। नर्मदा के पार के इलाके को उत्तर वाले लोग दक्खिन कहते आए हैं। मोटे तौर पर इसके अंतर्गत महाराष्ट्र, आंध्र और कर्नाटक राज्यों के क्षेत्र आते हैं। दक्खिन नाम के इस भूभाग में प्रचलित होने के कारण खड़ोबोली को 'दक्खिनी' का नाम दिया गया। परंतु वास्तविकता वह है कि दक्खिनी का प्रचार और प्रसार इन्हीं भूभागों तक सीमित न रह कर सुदूर दक्षिण के केरल और तमिलनाडु तक पहुँच गया था। केरल के राजा स्वाति तिरुनाल ने हिन्दी में काव्य रचना की थी। तमिलनाडु के तंजाऊर नगर में शाह तुराव ने 'मन-समझावन' दक्खिनी हिन्दी में ही लिखा था। नसीरुद्दीन हाशमी के शब्दों में दक्कन में इब्तदा से यह 'दक्खिनी' और 'हिन्दी' नाम से मौसूम थी।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अतः दक्खिनी हिन्दी, हिन्दी का वह पूर्व रूप है, जिसका विकास प्रायः चौदहवीं सदी से अठारहवीं सदी तक दक्षिण के वहमनी, कुतुबशाही, आदिलशाही आदि राज्यों के सुल्तानों के संरक्षण में हुआ था। यह मूलतः दिल्ली के आसपास की हरियाणी और खड़ीवोली ही थी, जिस पर व्रज, अवधी तथा पंजावी के साथ मराठी, सिंधी, गुजराती और दक्षिण की सहवर्ती भाषाओं अर्थात् तेलुगु, कन्नड़ तथा मलयालम आदि का भी प्रभाव पड़ा था। इसने अरवी, फारसी, तुर्की, पुर्तगाली आदि विदेशी भाषाओं के शब्द भी प्रचुर मात्रा में ग्रहण किए थे। इसके लेखक और कवि अधिकतर इस्लाम के अनुयायी थे। एक प्रकार से इसे संसार की सवसे मिश्रित भाषा कहा जा सकता है।

दक्खिनी के लेखकों ने "हिन्दी में अरवी और फारसी के शब्दों और शैलियों को संजोया है, न कि अरवो और फारसी में हिन्दी के शब्दों को"। इस प्रकार इसने अपने मूल स्वरूप को अक्षुण्ण वनाए रखा है, भले ही दक्खिनी के कवियों और लेखकों ने अरवी-फारसो लिपि का प्रयोग किया है। लिपि की भिन्नता ही हिन्दी के साथ इसकी अभिन्नता में वाधक नहीं है। दक्खिनी के अधिकतर कवियों ने इस भाषा को आरंभ से ही हिन्दी कहा है।

1582 ई. में जानम कहते हैं–

"ये सव बोलूं हिन्दी वोल
पन तू अनभौ सेती खोल
ऐब न राखे हिन्दी बोल
मानी तो चख देखें खोल"

वीजापुर के काज़ी बहरी (1700 ई.) भी इस भाषा को हिन्दी वताते हैं–

"हिन्दी तो जवां च है हमारो
कहने न लग हमन कूं भारी"

फिर भी, हम कह सकते हैं कि यह भाषा न तो फ़ारसी-निष्ठ उर्दू-ए-मोअला है और न संस्कृत-बहुल क्लिष्ट हिन्दी ही है। यह तो दक्खिनी है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

उत्तर भारत में अलाउद्दीन खिल्जी के शासन काल में अमीर खुसरो (1295-1325) ने हिन्दी के जिस रूप को साहित्य में प्रतिष्ठित करने का प्रयोग किया था, वह क्षेत्रीय और जनपदीय प्रभावों से ऊपर उठकर एक व्यापक क्षेत्र की भाषा के रूप में परिणत होता जा रहा था। यद्यपि अमीर खुसरो से पहले मसऊद-साऊद सुलेमान की रचनाओं का भी उल्लेख मिलता है। उन्होंने लिखा है कि "हिन्दवी बूद अस्त दर अय्यामे कुहन" अर्थात् हिन्दी पुराने ज़माने में भी थी।

अमीर खुसरो के पश्चात् कई कारणों से उत्तर में इस भाषा को विकास का अवसर नहीं मिल सका, किंतु दक्षिण के प्रदेशों में दक्खिनी के रूप में इसका समुचित विकास हुआ। जिस समय उत्तर भारत में खड़ीबोली केवल बोलचाल की भाषा ही थी, उस समय दक्षिण में वहाँ के राज्यों का संरक्षण पाकर उसमें विपुल साहित्य की रचना हो रही थी। इन राज्यों के सुल्तानों ने न केवल कवियों और लेखकों को सम्मान तथा संरक्षण प्रदान किया था, अपितु इब्राहीम आदिलशाह द्वितीय, अली आदिलशाह, कुली कुतुब शाह जैसे सुल्तानों ने अपनी अनेक ख्यातिप्राप्त रचनाओं के द्वारा साहित्यकारों का मार्गदर्शन भी किया था। फरिश्ता ने अपने इतिहास में स्पष्ट रूप से उल्लेख किया है कि राजकीय कार्यालयों में फारसी के बजाय हिन्दी भाषा प्रचलित थी और सल्तनत ने उसे सरकारी ज़बान का पद दे रखा था।

वैसे तो इतिहास के आरंभिक काल से ही उत्तर और दक्षिण के लोग राजनैतिक, धार्मिक और व्यापारिक कारणों से एक-दूसरे के यहाँ आते-जाते रहे हैं, जिसका प्रभाव एक दूसरे प्रदेश की भाषा पर पड़ता रहा है। इससे उत्तर भारत से अनेक शब्द दक्षिण की भाषाओं में और दक्षिण की भाषाओं के अनेक शब्द उत्तर की भाषाओं में आए हैं। भारत में प्राचीन काल से तीर्थाटन की प्रथा रही है और उत्तर भारत में बद्रीनाथ, ऋषिकेश से लेकर दक्षिण में कांची, तिरुपति, श्रीरंगम्, रामेश्वरम् तथा कन्याकुमारी तक लोगों का बराबर आना-जाना बना रहा है। साधुओं, संतों, पीरों और

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

फकीरों की टोलियों ने भारत की भाषाओं को समीप लाने में सेतु का काम किया है। कबीर ने कहा है, "भगती द्राविड़ उपजी लाए रामानंद।" प्रशासन, वाणिज्य और व्यापार आदि क्षेत्रों से संबद्ध शब्दावली भी उत्तर से दक्षिण की भाषाओं में आई। केरल में इस भाषा को 'गुसांई' भाषा कहा जाता था, क्योंकि उत्तर से आने जाने तीर्थ-यात्री 'गुसांई' कहलाते थे। केरल में विशेषकर मालाबार में, इस्लाम के अनुयायी भी इसी भाषा में प्रचार करते थे, जिसका मोपिला भाषा पर भी पड़ा था।

अलाउद्दीन खिल्जी के 1295 ई. में देवगिरि पर आक्रमण से इतिहास में एक नया युग आरंभ होता है, जिससे भाषा के क्षेत्र में भी एक नया मोड़ आता है। मुहम्मद तुगलक के शासन काल में जब राजधानी को दिल्ली से बदलकर दौलताबाद ले जाने का हुक्म हुआ। तो अनेक राजदरबारी नागरिक सैनिक, कर्मचारी. व्यापारी, सूफी, संत, फकीर– सभी सपरिवार दक्षिण पहुँचे, जिनमें अधिकांश लोग दिल्ली के आस-पास के थे और हरियाणी तथा खड़ीबोली ही बोलते थे। वे जिस क्षेत्र में जा पड़े थे, वहाँ की भाषा उनके लिए दुरूह थी। फारसी और अरबी का ज्ञान रखने वाले उंगलियों पर गिने जा सकते थे। इसलिए उन्होंने इस ग्रामीण बोली (बांगरु या जाटू) और हरियाणी को ही माध्यम बनाया, जो आज से लगभग 500 वर्ष पूर्व दिल्ली के आस-पास बोली जाती थी और उसी में साहित्य रचना की थी। इस्लामी तथा सूफी संतों ने भी उसी माध्यम से उनमें धर्म का प्रचार किया, जो 'सनअती' के इस कथन से स्पष्ट हो जाता है–

> "जिसे फारसी का न कुछ ग्यान है
> सो दक्खिनी ज़बां उसको आसान है"

जनूनी ने भी (1670 ई.) में इस बात को स्वीकार करते हुए लिखा है :–

> "मैं इसको दर हिन्दी जबां इस बास्ते कहने लगा
> जो फारसी समझे नहीं समझे इसे खुश होकर"

बोलचाल की भाषा में इसका बहुत कुछ प्रयोग आज भी आंध्र, कर्नाटक, महाराष्ट्र, केरल, तमिलनाडु प्रदेशों में होता है। इस भाषा में 'अखबार'

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इधै, कथी, कीर, गांडा, घालना, चौतरा, जिनावर, जुवान, तत्ता, थोबड़ा, दीवा मोकला, न्यारा. बलद, मुँडासा, सेती, हांडना, सपडंना, नेड़े, हाँक जैसे शब्द शुद्ध साहित्यिक रूप में प्रयुक्त हुए हैं, जो हरियाणी के हैं। इन शब्दों का प्रयोग निज़ामी की मसनवी 'कदम राव पदम राव' में प्रचुर मात्रा में मिलता है। इस भाषा को अनेक नामों से विहित किया गया है जैसे "हिन्दी" "हिन्दवी, "दक्खिनी", "रेख़्ता" "गूजरी" तथा "देहलवी"। यह समझने की बात है कि "उर्दू" शब्द का प्रयोग उस समय तक नहीं था और न ही दक्खिनी के किसी कवि ने इसका उल्लेख किया है। पाकिस्तान के प्रसिद्ध आलोचक सुहेल बुखारी ने अपनी पुस्तक "सबरस पर एक नज़र" में उस समय की उत्तर की भाषा को हरियाणी ही कहा है और उसी के विकसित रूप को दक्खिनी के कवियों ने अपनाया था। उनका मानना है कि 1635 ई. तक जबकि वजही ने "सबरस" लिखी है, शहर दिल्ली में उर्दू का रिवाज ही नहीं था। दिल्ली में उर्दू का दाखिला पहली बार 1645 ई. में उर्दू-ए-मौअला (मोहल्ला) बसने के बाद होता है, क्योंकि इसी वर्ष में शाहजहाँ आगरा से अपनी राजधानी दिल्ली उठाकर ले गया था। शहर दिल्ली इस ज़बान से बिल्कुल खाली था।

यहाँ यह भी उल्लेख करना अप्रासंगिक न होगा कि वली दक्खिनी भी जब मोहम्मद शाह रंगीले के जमाने में दिल्ली पहुंचा तो शेख साअदुल्ला गुलशन देहलवी ने उसे परामर्श दिया कि "तुम दक्खिनी ज़बान को छोड़कर शाहजहाँबाद के उर्दू-ए-मौल्ला की ज़बान में शेर लिखा करो।" वली दक्खिनी की भाषा का दिल्ली के नागरिकों पर अनुकूल प्रभाव पड़ा, क्योंकि दिल्ली के आम नागरिकों की भाषा उसी हरियाणा से प्रभावित थी, जिसे दक्खिनी के रूप में स्वीकार किया गया था। इस प्रकार दिल्ली में खड़ीबोली में साहित्य रचना की लोकप्रियता बढ़ी। इसी खड़ीबोली के गद्य से देवनागरी में लिखा जाने वाला गद्य भी प्रभावित हुआ और हिन्दी में भी खड़ीबोली का परिनिष्ठित रूप ग्रहण कर लिया, क्योंकि व्याकरणिक दृष्टि से उर्दू और हिन्दी समान भाषाएँ हैं। सभी जानते हैं कि इनका सम्मिलित नाम भी सामान्यत: हिन्दी ही रहा था। यह अंग्रेजों की विभाजन और शासन की नीति थी कि इनको

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अलग-अलग कर दिया गया। फोर्ट विलियम कॉलेज ने उर्दू और हिन्दी की मलग-अलग पहचान स्थापित कर भाषा का विभाजन कर दिया।

दक्खिनी, उत्तर की परिनिष्ठित हिन्दुस्तानी का भ्रष्ट रूप नहीं है, वल्कि ऐतिहासिक दृष्टि से आज की हिन्दुस्तानी, दक्खिनी का ही विकृत रूप है। सर जार्ज ग्रियर्सन ने 'लिंगविस्टिक सर्वे ऑफ इण्डियां' में ठीक ही कहा है कि हिन्दुस्तानो विकृत दक्खिनी है। अतः दक्खिनी साहित्य के अध्ययन की विशेष आवश्यकता है।

दक्खिनी का महत्व इस वात से स्वतः स्पष्ट हो जाता है कि यही वह भाषा है, जिससे खड़ीबोली हिन्दी का विकास क्रम पूरा होता है। प्रश्न यह उठता है खड़ीबोली हिन्दी का साहित्यिक विकास दक्खिन में ही क्यों हुआ ? उत्तर में इसके सामने क्या वाधाएँ थीं ? खड़ीबोली का जो प्रयोग 13 वीं और 14 वीं शताब्दी के बीच अमीर खुसरों और वू अली कलन्दर जैसे कवि कर रहे थे, वह उत्तर में आगे क्यों नहीं बढ़ी ? 'भारतेन्दु हरिश्चन्द्र' के वाद हिन्दी साहित्य को खड़ीवोली एकदम कहां से मिल गई ? इस बीच के चार-पाँच सौ वर्षों की वह कड़ी कहाँ गई ? क्या भारतेन्दु के बाद यकायक खड़ीवोली इतनी समृद्ध हो गई कि सभी साहित्यिक रचनाएँ इसमें लिखी जाने लगीं ? निश्चिय ही खड़ीबोली का यह विकास अवश्य कहीं होता रहा और वह स्थान था– दक्षिण भारत, जहाँ दक्खिनी के रूप में अपार साहित्य लिखा गया। इस अवधि में यहाँ अनेक लब्ध-प्रतिष्ठ कवियों ने इसी भाषा में अपनी रचनाएँ कीं, प्रबंध काव्य लिखे, मसनवियां लिखीं और गद्य ग्रंथ लिखे।

खड़ीबोली का विकास दक्षिण में ही क्यों ?

इसका पहला कारण यह है कि उत्तर में गुलाम वंश के बाद मुगल शासन आया। मुगलों की राजधानी अधिक समय तक आगरा ही रही। आगरा ब्रज भाषा का केन्द्र था। उस समय की राजभाषा फारसी थी। इसलिए ब्रज भाषा में तो कविताएँ हुईं, किंतु खड़ीबोली में नहीं। सरकारी दफ्तरों में फारसी छाई रही। इसलिए उत्तर में आज तक यह कहावत है -

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"हाथ कंगन को आरसी क्या
पढ़े लिखे को फारसी क्या"

दक्षिण के मुस्लिम राज्यों ने फारसी को नहीं अपनाया, बल्कि हिन्दी अर्थात् दक्खिनी को ही राजभाषा का दर्जा दिया। मुगलों से उनके संबंध सौहार्द-पूर्ण नहीं थे। मुगल शासन में 75 प्रतिशत से अधिक सरकारी पद फारसी जानने वालों को ही मिलते थे, जबकि दक्षिण में यह बात नहीं थी। यही कारण है कि दक्खिनी के रूप में खड़ीबोली का विकास दक्षिण के प्रदेशों में हो हुआ।

उत्तर भारत में जिस काल में सूर, तूलसी और मीरा की स्वरलहरियां गूंज रही थीं, केशव और बिहारी की श्रृंगारिक रचनाओं से सर्वत्र मादकता व्याप्त थी, उसी समय 'नवरस' और 'सबरस' जैसी रचनाओ से दूर दक्षिणापथ का जन-मानस भी रस-विभोर हो रहा था। कुतुब मुश्तरी, फूलवन, चन्द्रवन व नहियार, मैना सतवन्ती जैसे प्रेमाख्यानकों से साहित्य के भंडार को भरा जा रहा था। इस साहित्य को जब तक हम हिन्दी साहित्य की धरोहार नहीं मानेंगे, तब तक हिन्दी साहित्य का इतिहास अधूरा ही रहेगा और हिन्दी भाषा का समग्र अध्यापन भी अपूर्ण।

आज दक्खिनी के रूप में अपार साहित्य उपेक्षित पड़ा है, जिसका साहित्यिक दृष्टि से ही नहीं, अपितु ऐतिहासिक एवं सांस्कृनिक दृष्टि से भी बहुत महत्व है। इसे प्रकाश में लाने की आवश्यकता है।

काव्य सौन्दर्य की दृष्टि से भी यह साहित्य अपना सानी नहीं रखता। बानगी के लिए इब्राहीम आदिलशाह के नवरस में वर्णित एक सुंदर चन्द्रमा की छटा तो निहारिए-

"सोम सेत मध स्याम मानों सुन्दरी रूप लछन
बादर आंचर तापर मुरत लागे कब गुपत कब प्रकट दिसे बदन"

श्वेतचन्द्र में कालिमा ऐसी प्रतीत होती है मानो वह कोई सुंदर स्त्री है। बादल उसके मुख पर ऐसा लग रहा है, जैसे उसके सुंदर मुख पर कोई आंचल हो, जो हवा के कारण कभी उड़ जाता है और कभी उसे ढक लेता है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कवि का एक और सुंदर चित्रण देखिए-नायिका की छवि का वर्णन कठिन है। उसके प्रतिपल उवलते सौन्दर्य में बिहारी की नायिका भी पीछे रह जाती है, क्योंकि रूप लावण्य प्रतिपल परिवर्तित हो रहा है भला चित्रकार उसका चित्रण कैसे कर सकता है ?

"एक नार देखा खड़ी सामने
पूनम रात की मकर चांदनी
या झमके मेघ खत सौदामिनी
चितारी चित न सके हुए मानी
ज्यों मौज पे मौज आके पानी"

हर्ष का विषय है कि हिन्दी शोधार्थियों का ध्यान इस ओर गया है–और हिन्दी साहित्य की इस अमूल्य कड़ी को फिर से जोड़ने की दिशा में प्रयत्न आरंभ हो गए हैं। खेद का विषय है कि दक्खिनी को अभी भी हिन्दी साहित्य में यथोचित स्थान नहीं मिल पाया है। विश्वविद्यालयों की पाठ्य-पुस्तकों में दक्खिनी कवियों की रचनाओं को शायद ही कहीं सम्मिलित किया गया हो। यह एक चुनौती है। हिन्दी साहित्य के अध्येता जहाँ मैथिली के 'विद्यापत्ति' ब्रज के 'सूर' और 'बिहारी' तथा अवधी के 'जायसी' और 'तुलसी', राजस्थानी की रचना 'पृथ्वीराज रासो' और, 'वेली किसन रुकमणी री' का अध्ययन स्नातक और स्नातकोत्तर स्तर पर आवश्यक समझते हैं, वहाँ दक्खिनी के 'मुल्ला वजही', 'गवासी', 'निज़ामी' और 'इब्ने निशाती' की रचनाओं को उनका अपेक्षित स्थान क्यों नहीं देते? वास्तव में दक्खिनी के समस्त साहित्य को देवनागरी लिपि में उपलब्ध करने की आवश्यकता है। तभी हम हिन्दी भाषा की इस कड़ी को मुख्य धारा के साथ जोड़ सकेंगे।

हिन्दी के अखिल भारतीय और धर्म-निरपेक्ष स्वरूप को दृष्टि में रखते हुए भी दक्खिनी हिन्दी के अध्यापन की विशेष आवश्यकता है। इससे हिन्दी साहित्य का इतिहास अपनी परिधि से निकल कर दक्षिण तक विस्तृत हो जाएगा।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दक्खिनी हिन्दी की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

डॉ. वेदप्रकाश शास्त्री

दक्खिनी हिन्दी को पृष्ठभूमि का परिज्ञान प्राप्त करने अथवा परिचय देने से पूर्व आवश्यक है कि हम सर्वप्रथम इसके वास्तविक नाम का परिचय प्राप्त कर लें। फारसी लिपि में उपलब्ध दक्खिनी के विभिन्न ग्रंथों में इस भाषा अर्थात् दक्खिनी या दक्खिनी हिन्दी के तीन नाम उपलब्ध होते हैं— 'हिन्दी', 'हिन्दुई' या 'हिन्दवी' तथा 'दक्खिनी'।

'हिन्दी', 'हिन्दुई' तथा 'हिन्दवीं' एक ही अर्थ के परिचायक हैं, हिन्द अर्थात हिन्दुओं की भाषा। हिन्दी की अपेक्षा हिन्दवी शब्द अधिक पुरातन हैं। आरंभ में इस शब्द (हिन्दवी अथवा हिन्दी) का प्रयोग फारसी से इसका अंतर स्पष्ट रूप में पृथक दिखाने के लिए इस देश (भारत अथवा हिन्द) की भाषा के रूप में ही किया गया था। मुल्ला वजही ने अपनी गद्य कृति "सबरस" (1635 ई.) में अपने कथानक का श्रीगणेश करते हुए लिखा है–

> "हिन्दोस्तान में हिन्दी ज़बान सों इस लताफत इस छन्दां सों नज्म और नस्र मिलाकर-जुलाकर मों नँ बोल्या" (पृ. 11)।

इस कथन में जवान, लताफत, नज्म, नस्र मात्र चार ही विदेशी शब्दों का प्रयोग हुआ हैं। हिन्दीकरण के पश्चात् यह कथन इस प्रकार पढ़ा जा सकता है—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"हिन्दुस्तान में, हिन्दी भाषा में इस छंद में गद्य और पद्य मिलाकर (दोनों को) घोलकर किसी ने इस प्रकार (इस से पूर्व) नहीं कहा (लिखा)।"

शेख अशरफ ने अपनी कृति 'नौसर हार' (1503 ई.) में इस देश की भाषा को हिन्दवी कह कर संबोधित किया है–

"वाजा कँता हिन्दवी में। किस्सए मक़तल शाह हुसैं।
नज्म लिखी सब मौजू आन। यों मैं हिन्दवी कर आसान॥"

(मख्तूतात-पृ. 17)

शेख अशरफ के इस कथन से यह भी ध्वनित होता है कि उस समय हिन्दवी भाषा भी दो प्रकार की थी–एक सुपठित जन समुदाय की क्लिष्ट भाषा तथा दूसरी जन सामान्य की भाषा। अपने प्रचार के लिए जन सामान्य की भाषा का प्रयोग ही उचित मानकर उन्होंने इस देश की भाषा को भी सहज और सरल बनाकर अपने लक्ष्य की ओर अग्रसर होने का प्रयास केवल इसी दृष्टि से किया, जिससे बहुसंख्यक व्यक्ति इस प्रचार से लाभान्वित हो सकें।

शाह बुर्हानुद्दीन जानम, बीजापुरी ने अपनी प्रसिद्ध रचना 'इर्शाद-नामा' (1582 ई.) में इस देश की भाषा के लिए संभवत: सबसे पहले स्पष्टत: हिन्दी शब्द या संज्ञा का प्रयोग किया है–

"यह सब बोलू हिन्दी बोल। पुनतूँ एन्हीं सेती घोल॥
ऐबेन राखे हिन्दी बोल। मानी तो चख दीखें खोल॥
हिन्दी बोलने किया खान। जेकर परसाद भी मुंज ग्यान॥"

(मख्तूतात-पृ. 19)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इन्हीं की परंपरा के अनुयायी जुनूनी ने मैंर रूम के मोजज़ह का अनुवाद प्रस्तुत करते समय (1690 ई.) इस देश की भाषा को स्पष्ट शब्दों में हिन्दी कहा है–

"मैं इसकों दर हिन्दी जबां इस वास्ते कहने लगा।
जो फारसी समझे नहीं समझे इसे खुशदिल होकर ॥"

(मख्तूतात-पृ . 22)

बुलवुल ने भी इसी परंपरा का अनुसरण करते हुए अपनी मसनवी चंदर वदन व महयार में इस देश की भाषा के लिए 'हिन्दी' शब्द का प्रयोग किया है।

"हुआ वुलवुल इससे जरूरत।
दिखाना फर्स की हिन्दी में सूरत ॥"

कुछ ग्रंथों के नाम यथा फिक्कए हिन्दी, हिदारते हिन्दी तथा सुल्तान मुहम्मद कुली कुतुबशाह की एक नायिका का नाम 'हिन्दी छोरी' हमारी इस मान्यता के समर्थक हैं कि "हिन्दी शब्द का प्रयोग भारत की" के अर्थ में हुआ है। उपर्युक्त रचनाकारों के कथन से यह भी स्पष्टतः ध्वनित होता है। उनका हिन्दी में प्रणयन के लिए प्रवृत्त होने का एक मात्र उद्देश्य फारसी भाषा में विद्यमान वस्तुओं, वातों का इस देश की वाणी द्वारा प्रकट करें।

इसी 'हिन्दी', 'हिन्दवी' को कुछ लेखकों ने 'दक्खिनी' नाम से भी संबोधित किया है। वजही ने अपनी मसनवी 'कुतुव मुश्तरी' में इसे 'दक्खिनी' के नाम से संवोधित कर लिखा है–

"दखिन में जो दखिन मिठी बात का।
अदा नैं किया कोई इस धात का ॥"

(पृ. 16)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ध्यातव्य है वजही ने अपने सबरस की इसी भाषा को हिन्दी कहा है और "कुतुब मुश्तरी' में दक्खिनी। यह इस बात का प्रमाण है कि ये रचनाकार एक ही भाषा को हिन्दी अथवा दक्खिनी दोनों ही नामों से स्मरण करते थे, और उल्लेख करते थे।

इब्न निशाती ने अपने "फूलबन" (1649 ई.) में इसे दक्खिनी कहा है।

इसे हरकस के तई समझाको तूं बोल।
दक्खिनी के बाता सीरयी कू खोल ॥

रूस्तम ने भी अपने "खाविर नामा" में इसे दक्खिनी के नाम से स्मरण करते हुए लिखा है–

किया तर्जुमा दखिनी होर दिल पजीर।
बोल्यी मोत्रजह यूं कमाल खाँ दबीर ॥

इस प्रकार इस एक ही भाषा के तीन नाम मिलते हैं– हिन्दवी, हिन्दी तथा दक्खिनी।

इस नामकरण का परिचय प्राप्त करने के पश्चात् स्वाभाविक जिज्ञासा उत्पन्न होती है यह जानने की कि देश अथवा देशवासियों के नाम पर हिन्दी अथवा हिन्दवी कहलाने वाली इस देश की भाषा का नाम दक्खिनी क्यों पड़ा ?

इस भाषा का विश्लेषणात्मक अध्ययन करने पर विदित होता है कि इस भाषा का (जिसे दक्खिनी कहा गया है) किसी भी दाक्षिणात्य आर्य अथवा द्रविड़ भाषा से कोई संबंध नहीं है। पारिवारिक दृष्टि से इस का संबंध उत्तर भारत की आर्य भाषाओं से है। इसे दक्खिनी कहने के पीछे कुछ सशक्त ऐतिहासिक कारण हैं। दिल्ली के सुल्तान अल्लाउद्दीन खिलजी की सेना ने 1297 ई. में गुजरात पर विजय प्राप्त की। उसी के सेनापति मलिक काफूर ने

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

1304 में महाराष्ट्र, 1307 में आन्ध्र और 1308 में कर्नाटक पर विजय प्राप्त की। ये सभी प्रान्त दिल्ली के सूबे माने जाने लगे। मुस्लिम बादशाहों ने दक्खिन को इतना महत्व दिया कि प्रायः सभी बादशाह दक्खिन को अपने राज्य का अंग बनाने की दिशा में विशेषतः सचेष्ट रहे। 1327 ई. में मुह-म्मद तुगलक ने देवगिरि अर्थात् दौलताबाद को अपनी राजधानी बनाया। फिरोज तुगलक के शासन काल में दक्खिन स्वतंत्र हो गया। गुजरात भी तुग-लक शासन के कर पाश से विमुक्त हो गया। 1333 ई. में विजय नगर में हिन्दू राज्य स्थापित हुआ। 1388 ई. में फिरोज शाह तुगलक के मरते ही दक्षिण पूर्णतया स्वतंत्र हो गया। 1347 ई. हसन गंगो बहमनी ने गुलबर्गा में बहमनी राज्य स्थापित किया परन्तु यह अल्पायु सिद्ध हुआ। इस राज्य के छिन्न भिन्न होते ही बीजापुर में आदिल शाही (1490ई.), गोलकुंडा में कुतुब शाही (1512 ई.), बीदर में बरीद शाही (1497 ई.), बरार में इमाद शाही (1490 ई.), तथा अहमद नगर में निजाम शाही (1590 ई.) आदि राज्य स्थापित हुए परन्तु ये सदैव परस्पर लड़ते झगड़ते रहे। ये राज्य दक्खिनी हिन्दी के कवियों और लेखकों को सतत आश्रय देते रहे। इसी संरक्षण के परिणामस्वरूप 15 वीं, 16 वीं तथा 17 वीं शताब्दियों में दक्खिनी हिन्दी में श्रेष्ठ साहित्य रचा गया। 17 वीं शताब्दी के मध्य में जब औरंगजेब ने दक्षिण के विभिन्न राज्यों को समाप्त किया तब कुछ समय के लिए इस साहित्य सर्जन के कार्य में गत्यावरोध उत्पन्न हुआ, परंतु जब 1650 ई. में औरंगजेब ने औरंगाबाद को अपना केन्द्र बनाया। तब फिर दक्खिनी हिन्दी के कवि वहाँ पहुँचे और औरंग-जेब ने नुसरती आदि दो-चार कवियों को न केवल सम्मानित किया अपितु उन्हें पूर्ण संरक्षण भी प्रदान किया जिसके फलस्वरूप कुछ उत्कृष्ट साहित्य रचा गया। 1323 ई. में निजाम राज्य के संस्थापक निजामुल्मुल्क आरुफ जार दक्षिण के स्थायी सूबेदार बन कर दक्षिण पहुँचे और कालान्तर में अव-सर पाकर उन्होंने अपनी स्वतंत्र सत्ता की स्थापना हैदराबाद में और परंपरा-नुसार दक्खिनी हिन्दी के साहित्यकारों को आश्रय दिया। इस प्रकार राज्या-श्रय पाकर दक्खिनी हिन्दी यहाँ खूब फली फूली।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हमारे इस कथन का यह उद्देश्य कदापि नहीं है कि जिस समय दक्खिनी हिन्दी में साहित्य रचना हो रही थी उस समय दक्खिन की समृद्ध भाषाओं मराठी, तेलुगु, कन्नड़, तमिल आदि में यह रचना प्रक्रिया अवरुद्ध थी। इस के विपरीत हमारा मंतव्य यह बताना है कि जिस प्रदेश में आज हिन्दी का विरोध हो रहा है उसी प्रदेश में हिन्दी, हिन्दवी अथवा दक्खिनी का साहित्य उस स्थिति में पनपा जब कि वहाँ अच्छा खासा साहित्य वहाँ की विविध भाषाओं में पहले से विद्यमान था। इस स्तरीय साहित्य की विद्यमानता में एक नई भाषा के साहित्य का संवर्धित और लोकप्रिय होना चमत्कार की ही बात कही जा सकती है। मराठी में 1263 से 1271 ई. के मध्य आचार्य सूत्र सिद्धांत सूत्र पाठ, लीला चरित आदि ग्रंथ महीन्द्र भट्ट, महिम भट्ट द्वारा रचे गए। तमिल में 5वीं शताब्दी में मणि मेखलाई तथा कुंडल केश्री भी जैसे महाकाव्य रचे गए। कन्नड़ में 815-877 ई. में नृप तुङ्ग द्वारा कविराज मार्ग नायक अलंकार ग्रंथ रचा गया। तेलुगु में 1026-63 ई. के मध्य नन्नय भट्ट द्वारा भारत एवं तेलुगु व्याकरण की रचना की गई। मलयालम की प्रथम कृति 13वीं शती का रामचरितं माना जाता है जिसके प्रणेता त्रावणकोर नरेश श्री राम हैं। इस प्रकार दक्षिण के साहित्य प्रणयन की परंपरा 5 वीं शती तक की उपलब्ध होती है। इस के विपरीत देवगिरि में मुस्लिम राज्य की स्थापना 1327 ई. में हुई और इस के लगभग 100 वर्ष बाद ख्वाजा वन्दे नवाज गेसू-दराज मुहम्मद हुसैनी का "मेराजुल अशकीन" दक्खिनी हिन्दी की प्रथम कृति सामने आई।

दक्खिनी में यह हिन्दवी अथवा दक्खिनी साहित्य बहमनी, आदिल शाही, कुतुब शाही, बरीद शाही, इमाद शाही, निजाम शाही आदि राजवंशों के सुलतानों और उनके पार्षदों के मस्तिक की उपज थी। इन शासकों में से कइयों ने हिन्दू कन्याओं से विवाह किए। कुछ ने हिन्दू विद्वानों को शासन का अधिकारी भी बनाया परंतु इस भाषा के प्रचार, साहित्य निर्माण आदि में स्थानीय जनता का किसी प्रकार का सहयोग रहा हो। इस का कोई पुष्ट

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रमाण नहीं मिलता। अपनी भाषाओं के उत्कृष्ट साहित्य की विद्यमानता में भी इस प्रदेश की जनता ने इस भाषा और उसके साहित्य का विरोध नहीं बल्कि उसे फलने फलने दिया। इसका एक मात्र कारण यही जान पड़ता है कि किस्से-कहानियों की रोचकता और भाषा की सरलता ने उन्हें इस भाषा को अंगीकृत करने के लिए प्रेरित किया होगा। यह सब होते हुए भी एक विशेष बात हमारा ध्यान आकर्षित करती है। वह यह है कि हिन्दुस्तान अथवा हिन्दुओं की भाषा होने पर भी किसी हिन्दू ने इस भाषा में सर्वप्रथम प्रणयोन्मुख होने का प्रयास नहीं किया। 17 वीं शताब्दी तक जितने भी ग्रंथ दक्खिनी हिन्दी के उपलब्ध होते हैं उनके प्रणेता एक मात्र मुस्लिम साहित्यकार ही हैं।

किसी भी अपरिचित भाषा का किसी अपरिचित क्षेत्र में पनपना आश्चर्य की ही बात है। परंतु विचार करने पर जो तथ्य सामने आता है वह इस आश्चर्य को शामिल कर देता है। भाषाविदों के मतानुसार समग्र भारत की साहित्यिक भाषा वैदिक संस्कृत थी। धीरे-धीरे जब वह जन सामान्य से दूर होने लगी जब उसी से लौकिक संस्कृत का जन्म हुआ, जिस का यथा समय पाणिनी ने संस्कार किया और तब उसकी विजय वैजयंती संपूर्ण भारत के नभो मंडल में फहराई। कालिदास, श्रीहर्ष, भारती आदि कवियों; वाराह-मिहिर आदि ज्योतिर्विदों, गंगाधर, चक्रदत्त, वाग्भट्ट आदि चिकित्सकों; नागार्जुन आदि रसायनाचार्यों ने इसी में रचना कर भारत भारती के भंडार को भरा। जब इस का क्षेत्र भी विद्वान् मंडल तक सीमित होने लगा तब इसी से प्राकृत और तदनंतर अपभ्रंश का उदय हुआ। इन्हीं भाषाओं का आश्रय लेकर जैन-बौद्ध श्रमणों, नाथ-सिद्ध योगियों तथा हिन्दू संतों ने भारत में विचरण कर अपने विचारों का प्रचार किया था और इसी विचरण के फल स्वरूप समग्र भारत में अपभ्रंशादि भाषाओं के बीज वपित होकर अंकुरित होने की प्रतीक्षा कर रहे थे। हिन्दू धर्म के उद्धारक शंकराचार्य ने द्वारिका जगन्नाथ पूरी, रामेश्वरम् तथा बदरिकाश्रम आदि में अपने मठ स्थापित कर तथा हिन्दू समाज के लिए चारों धर्मों की यात्रा का अनिवार्य प्रावधान कर

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

भाषायी वैषम्य शमित करने का सफल तथा स्तुत्य प्रयास किया, जिसके फल-स्वरूप विभिन्न भाषाओं के दैनिक जीवनोपयोगी प्रयोग सभी क्षेत्रों में किसी न किसी रूप में जा पहुंचे थे और तद्-तद् क्षेत्र में इस प्रकार घुल-मिल गए थे कि उन्हें अपरिचित कह पाना कठिन ही नहीं अशक्य हो चुका था और यही कारण था क्रि जब मुसलमान इस देश में आए तब मुस्लिम संतों ने इस तथ्य को हृदयंगम कर कि इस देश में भले आसेतु ही हिमालय तक कितनी ही भाषाएँ क्यों न बोली जाती हो, परंतु रोटी कहने पर सर्वत्र रोटी और पानी कहने पर सर्वत्र पानी ही मिलता है। उसी भाषा में प्रचार करने का निश्चय किया, जो अपभ्रंशादि के माध्यम से अपने बीच विभिन्न प्रांतों की भाषाओं में छोड़ गयी थी। उत्तर भारत की इस बोलचाल की भाषा में साहित्य रचना का श्रीगणेश सबसे पहले विदेशियों ने किया। यह प्रक्रिया स्वाभाविक भी थी। इस समय भारतीय साहित्यकार प्रचलित साहित्यिक भाषाओं में रचनाएं कर रहे थे। ये भाषाएँ आए हुए विदेशियों के लिए न केवल कठिन अपितु निस्सार भी। अपनी मातृभाषा के अतिरिक्त यदि उन्हें किसी अन्य भाषा से लगाव था, तो जन साधारण की दैनिक बोलचाल की भाषा से जिस में उन्हें अपना दैनँदिनीय कार्य व्यवहार करना था। अपने धर्म, संस्कृति और सांहित्य का भी प्रचार करना था और यह कार्य सुगमतापूर्वक केवल जन सामान्य की बोलचाल की भाषा में ही निष्पादित हो सकता था। इस प्रकार के कार्य में मुस्लिम संतों का ही मुख्य हाथ था। सुल्तानों को यहाँ तथ्य मुस्लिम संतों के यहाँ फारसी का भी प्रचलन था, परंतु बहुत सूझबूझ के साथ इन सब ने भारतीय जनता के साथ व्यवहारार्थ शौरसेनी अपभ्रंश की उत्तराधिकारिणी खड़ीबोली को अपनाया। डॉ. अब्दुल हक बाबाए उर्दू ने अपनी पुस्तक 'उर्दू की इब्तिदाई नशो वनुमा में सूफियाय कराम का काम' में लिखा है कि "इन फकीरों और बुजुर्गों के घर पर कभी-कभी हिन्दी का भी इस्तेमाल होता था" इन साधु-संतों के प्रवचनों में केवल विदेशी मुसलमान ही नहीं, धर्मान्तरित हुए भारतीय मुसलमान और थोड़े बहुत हिन्दू भी शामिल होते होंगे, जिन के लिए इन संतों को हिन्दी का प्रयोग करना पड़ता होगा, टूटे-फूटे शब्दों में ही

3)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सही। इस प्रकार आज से सात-आठ सौ वर्ष पूर्व एक खिचड़ी भाषा का प्रादुर्भाव हुआ, जिसका आश्रय सर्वांश में भारतीय या केवल विदेशियों के मुख से विस्मृत होने के कारण इन भाषाओं में विदेशी शब्दों की संख्या किसी न किसी रूप में रहती थी। धीरे-धीरे मुस्लिम राज्य और संस्कृति के विस्तार के साथ-साथ इस भाषा (हिन्दी) की व्यापकता बढ़ी और उसी के साथ दक्षिण भी इसकी सरलता, स्पष्टता पर मुग्ध हो इसे अपनाने लगा। डॉ. अब्दुल हक ने अपनी उपर्युक्त पुस्तक में लिखा है– "इन बुज़ुर्गों के घरों में भी हिन्दी बोल चाल का रिवाज़ था और चूंकि यह इनके मुफीदे मतलब था। इसलिए अपनी तालीम व तकलीन में भी इसी से काम लेते थे।"

डॉ. अब्दुल हक द्वारा प्रयुक्त शब्द 'मुफीदे मतलब' विशेषतः ध्यान देने योग्य है। इसमें स्पष्ट रूप से धर्म प्रचार की ओर इंगित किया गया है। धर्म प्रचार के लिए जन सामान्य की भाषा से बढ़कर अन्य साधन नहीं हो सकता। अद्यावधि यें जितने भी धर्म प्रचारक हुए हैं, सभी ने जन भाषा को ही अपने प्रचार का माध्यम बना कर अपने उद्देश्य में सफलता प्राप्त की। मुस्लमान सूफियों ने भी इसी तथ्य को हृदयंगम कर हिन्दी को ही अपने प्रचार के माध्यम रूप में ग्रहण किया। ये विदेशी साहित्यकार क्योंकि भारतीय साहित्यिक भाषाओं और परंपराओं से परिचित नहीं थे और न ही उन्हें भारतीय छंद और अलंकारों का ज्ञान था अन्यथा भारतीय जनता के मन में उतरने के लिए वे अपने विचारों को पूर्णतः भारतीय देश तथा परिवेश में प्रस्तुत करते हैं। इसी अज्ञान का परिणाम था कि उनके ग्रंथ जनता के मनों में पूरी तरह घर नहीं कर पाए।

उत्तर भारतीय हिन्दी कवियों में सर्वप्रथम नाम अमीर खुसरो (देहांत 1325 ई.) का आता है। इन्होंने हिन्दी में कुछ लिखा अवश्य था, परंतु शुद्ध हिन्दी अथवा ब्रज मिश्रित हिन्दी में, यह निश्चित रूप से नहीं कहा जा सकता। इन्होंने अपने पूर्ववर्ती कवि मसऊद का उल्लेख किया है। मुहम्मद औफी ने अपने तजकरे (1228 ई.) में मसऊद के संबंध में लिखा है कि

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इन्होंनें दो दीवान फारसी के तथा एक हिन्दवी में लिखा था, परंतु आज एक भी दीवान उपलब्ध नहीं है। डॉ. अब्दुल हक ने शेख फरीदुद्दीन शकरगंजी (1173-1262 ई.) के कुछ पद उद्धृत कर उन्हें भी हिन्दी का आदिम कवि सिद्ध किया है। एक नमूना है "जलियाद की करना हर घड़ी, यकतिल हुजूर सों टलना नई"। इनके पश्चात् नाम आता हैशेख शरफुद्दीन अली कलंदर का, जिनका निधन 1323 ई में हुआ था। ये अमीर खुसरों के समकालीन थे। इनका यह दोहा प्रसिद्ध है–

"सजन सकारे जाएँगे और नैन मरेंगे रोय।
विधना ऐसी रैन कर भोर कभी ना होय ।।"

यह परंपरा उत्तर भारत में 12 वीं शताब्दी तक उपलब्ध होती है, तदनंतर यह उसी प्रकार अंतर्धान हो गई जैसे सरस्वती नदी।

खड़ीबोली के साहित्य की यह विदेशी परंपरा इस की 13, 14 और 15 वीं शताब्दी में गुजरात, महाराष्ट्र, विजयनगर आदि दक्षिणी प्रदेशों में मुसलमानी फौजों, संतों और दरवेशों के साथ गई और जैसे-जैसे लोग वहाँ वसते गये, वैसे-वैसे यह भी वहाँ घर करती चली गई। उत्तर से मुस्लिम संत किस संख्या में दक्खिन में पहुँचे, इसके संबंध में डॉ. अब्दुल हक का कथन द्रष्टव्य है-

"हजरत वुर्हानुद्दीन गरीब अपने मुर्शिदि कामिल हजरत सुल्तानुल औलिया खाजा निजामुद्दीन के हुकम से चार सौ वुजुर्गों के साथ दक्किन की जानिब रवाना हुए और वहाँ पहुँचकर दौलतावाद (रौजा) में कयाम फर्माया।"

(मेरा जुल आशकीन की भूमिका)

प्रसिद्ध इतिहासकार फरिश्ता के अनुसार बहमनी राज्य के सहकारी दफ़्तरों में हिन्दी का प्रचलन था और शासन ने उसे सरकारी भाषा का पद दे रखा था।

दक्खिनी के प्रथम ग्रंथकार ख्वाजा वंदे नवाज गेसूदराज मुहम्मद हुसैनी (1318-1422 ई.) माने जाते हैं। इनका शैशव और वार्धक्य दक्षिण में बीता

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

था। सुल्तान फिरोश शाह बहमनी के निमंत्रण पर ये गुलबर्गा पहुँचे थे और वहीं रहते हुए दिवंगत हुए। इनके तीन रिसाले दक्खिनी में उपलब्ध होते हैं - मेरा जुल आशकीन, रिसाला सेहवारा और हिदायत नामा। ख्वाजा साहब के पौत्र अब्दुल हुसैनी की भी एक कृत्ति दक्खिनी में है– निशातुल इश्क जो किसी फ़ारसी कृति का अनुवाद है। बहमनी राज्य के श्रेष्ठ कवि थे, निज़ामी जिनकी रचना कदमराव व पदमराव मसनवी है।

दक्खिनी साहित्य आदिल शाही (बीजापुर) कुतुबशाही राज्यों में खूब फली फूली।

कुतुबशाही राज्य में वजीह, गवासी, इब्ने निशाती, गुलाम अली, सेवक आदि अच्छे साहित्यकार हुए। आदिल शाही राज्य में शाह मीराँजी, बुर्हानुद्दीन जानम मुकीमी सनाती, रुस्तमी, नसरती आदि। बरीद शाही में भी कुछ साहित्य रचा गया। औरंगजेब की दक्षिण विजय के पश्चात् उस के आश्रय में भी कुछ साहित्यकार हुए, जिनमें प्रमुख हैं वली औरंगाबादी, जईफी, बहरी, वजदी, वली बेलूरी, इशरती आदि।

वली औरंगाबादी का यह पद प्रसिद्ध है, जिसे आज की मानक हिन्दी के समकक्ष रखा जा सकता है –

"बिरागी जो कहाते हैं उसे घरबार करना क्या।
हुई जोगन जो पी ली उसे संसार करना क्या॥
जो पीवे प्रीत का पानी उसे क्या काम पानी सो।
जो भोजन दुःख का करते हैं उसे आधार करना क्या॥"

(कुल्लियात : पृ. 55)

1723 ई. में हैदराबाद में निजाम आसफ जाह का राज्य स्थापित हुआ। इनके आश्रय में लाला मोहन लाल 'मेहताब', लाला लक्ष्मीनारायण

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

'शफीक' जैसे दक्खिनी के साहित्यकार हुए। आगे चलकर 'हलम' ने इसी दक्खिनी हिन्दी में ठुमरियाँ तथा अजमत ने हिन्दी छंद प्रस्तुत किए। मुहिब ने स्त्री सुधार पर अपनी लेखनी को गति दी। आधुनिक समय में गुलबर्गा के सुलेमान खतीब ने भारतीय उपमानों को लेकर अपनी दक्खिनी रचनाएँ प्रस्तुत कीं। उनकी एक कविता है –

"मिट्ठा मिठ्ठा मोठ का पापी।
सीता सर की पाक जवानी॥"

निष्कर्षतः कहा जा सकता है कि दक्खिनी हिन्दी ने दक्षिण में फुल-फल कर भावी राष्ट्रभाषा का मार्ग ही प्रशस्त नहीं किया बल्कि उसे वह दिशा दर्शन भी दिया, जिससे उसकी गद्य विधा का विकास हुआ।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दक्खिनी के ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में सूफी साहित्य का उद्गम और विकास

डॉ. विमल मदान

भारत के विशाल भूभाग को दक्षिण और उत्तर में विभाजित करते हुए विंध्याचल और सतपुड़ा की शृंखलाएँ तो हैं ही, किंतु इस से और भी बढ़कर विभाजक सीमा निर्धारित करते समय हमें पूर्व के महानदी, उत्तर में नर्मदा और पश्चिम में ताप्ती के तट के साथ-साथ अपनी रेखा खींचनी पड़ेगी। उस भौगोलिक विभाजक रेखा के रहते हुए भी उत्तर-दक्षिण के निवासी पृथक नहीं किए जा सकते। उत्तर-दक्षिण की जनता इस तरह हिल-मिल गई है कि आज सांस्कृतिक, धार्मिक, सामाजिक, ऐतिहासिक और चिंतन के आधारों पर उन्हें मिला रखना असंभव है।

प्राचीन संस्कृत साहित्य के अध्ययन से स्पष्ट होता है कि उत्तर भारत के आर्य दक्षिण के वैदर्भियों से विवाह करते थे और अगस्त्य जैसे ऋषियों ने हिमालय की शीतल गुफाओं का निवास छोड़कर विंध्याचल में अनुष्ठान किया था। उत्तर के अनेकानेक ऋषियों ने सरस्वती और गंगा के तट पर यज्ञ न रचाकर विंध्या और सतपुड़ा की घाटियों को भी यज्ञ की पवित्र ज्योति से आलोकित किया।

'दक्षिणापथ' के नाम से संस्कृत और अपभ्रंश के कई साहित्यकारों ने दक्षिण भारत को संबोधित किया है। दक्षिणापथ का अर्थ "दक्षिण की ओर जाने वाला मार्ग" है। संस्कृत साहित्य में दक्षिणापथ के विभिन्न प्रांतों का

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

उल्लेख मिलता है, जिन में चोल, केरल, पांड्या, आन्ध्र, कर्णाटक, तथा महाराष्ट्र प्रमुख हैं।

दक्षिणापथ का यह भूभाग धीरे-धीरे 'दक्षिण' कहलाने लगा। इस विस्तृत भूभाग को दो क्षेत्रों में विभाजित किया गया– एक भाग नर्मदा तथा तुंगभद्रा के बीच का है जो विदर्भ, महाराष्ट्र, तेलंगाना और आंशिक कर्णाटक के प्रदेशों की सीमा निर्धारित करता है और दूसरा भाग द्रविड़ देश के नाम से प्रख्यात हुआ जो तुंगभद्रा से सुदूर समुद्र की सीमा तक फैला हुआ है।

मुसलमान शासक और साहित्यकारों ने सर्वप्रथम तुंगभद्रा के उत्तरार्ध प्रदेश को 'दक्खिनी' के नाम से संबोधित किया। इन शासकों में अलाउद्दीन खिलजी ने मदुरै के मीनाक्षी मंदिर पर अपनी विजय पताका फहराई किंतु इन का संपर्क सुदूर दक्षिण से बहुत कम रहा। इन मुस्लिम शासकों का ऐतिहासिक और राजनैतिक संपर्क गोदावरी, तुंगभद्रा और कृष्णा के मध्य भाग तक ही रहा, जिसे दक्कन नाम दिया गया।

भाषागत परिवर्तनों का विश्लेषण करने से उत्तर भारत में आठवीं और नवीं शताब्दी में अपभ्रंश साहित्यिक रूप ले चुकी थी। इस में उच्च कोटि का साहित्य विकसित हुआ। दक्षिण में द्रविड़ भाषाएँ प्रचलित थीं। तमिल प्राचीनतम द्रविड़ भाषा है। 7 वीं और 8 वीं शताब्दी में वैष्णव और शैव संतों ने तमिल के साथ-साथ मलयालम, तेलुगु और कन्नड़ भाषा में भी साहित्य रचना की। कवीन्द्र मार्कण्डेय ने 15 वीं शताब्दी में बताया कि दक्षिण में गुर्जर जाति के लोग 'गौर्जरी' अथवा 'गूजरी' भाषा बोलते थे जिस में संस्कृत की प्रचुरता थी।

राजनैतिक और ऐतिहासिक परिप्रेक्ष्य में दक्कन बहुत समय तक चालुक्य के शासनाधीन रहा। 9 वीं शताब्दी में राष्ट्रकूटों का राज्य स्थापित हुआ। कुछ समय उपरांत ही देवगिरि में यादवों का शासन आया।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

राष्ट्रकूटों का जातीय संपर्क राजस्थान से बताया जाता है और यादवों का मथुरा के आभीरों से। यादवों के अंतिम शासनकाल में महाराष्ट्र में भक्ति की नई धारा साहित्य को प्रभावित करती है। अलाउद्दीन खिलजी ने देवगिरि पर विजय प्राप्त की, तब फारस और अरब के तुर्कों के साथ, दिल्ली के आसपास बसने वाले नव मुस्लिम जो हिन्दी भाषी थें, दक्खन में आकर बस गए। अलाउद्दीन की मृत्यु के पश्चात् गुलबर्गा में हसन गंगू ने बहमनी शासन की नींव डाली। दक्खिन में बहमनी शासन लगभग 200 वर्ष रहा। इन्हीं दिनों मुहम्मद तुगलक ने दौलताबाद को राजधानी बनाने का प्रयत्न किया। इस के पश्चात् निरंतर उत्तर भारत से व्यापारी, साधु-संत और मीर औलिया दक्खिन में आते रहे। राष्ट्रकूटों से लेकर आसफ जाही वंश के सातवें निज़ाम तक हज़ारों परिवार उत्तर भारत से दक्खिन में बस गए। 9 वीं शताब्दी में, दक्खिन में जिस मिली-जुली भाषा का उद्‌गम हुआ उसे दक्खिनी अथवा हिन्दवी कहा गया।

देवगिरि पर अलाउद्दीन खिलजी की विजय के साथ बहुत से मुसलमान साहित्यकार भी यहाँ आकार बस गए। इन साहित्यकारों ने दक्खिनी में फारसी-अरबी भी शब्दावली का प्रचुरता से मिश्रण किया। उस समय के शासकों ने दरबार में साहित्यकारों को सम्मानित किया. जिन्होंने दक्खिनी की मिली-जुली भाषा में विपुल साहित्य लिखा। अनेक धार्मिक ग्रंथों का अनुवाद भी दक्खिनी में हुआ। भाषाविज्ञान की दृष्टि से दक्खिनी को अवधी और ब्रज की तरह हिन्दी की एक बोली कहा जा सकता है। दक्खिनी में फ़ारसी-अरबी के साथ मराठी, तेलुगु और कन्नड़ की शब्दावली भी मिलती है। दक्खिनी ने दक्षिण की भाषाओं से अनेक अव्यय लिए हैं, जैसे 'नको' का व्यवहार 'नहीं' के स्थान पर, और च का प्रयोग 'ही' के अर्थ में। भाषावैज्ञानिक डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने दक्खिनी को हिन्दी की बोली स्वीकारा है The kind of speech the descendants of North Indian Muslims still speak in the Deccan. it is clear that they mostly hai-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ted from the Punjabi. Bangru and Vernacular Hindustani dialect of North India."

दक्खिन के भूभाग में गुलबर्गा, बीजापुर और गोलकुंडा मुख्य रूप से दक्खिनी साहित्य के क्षेत्र रहे। दक्खिनी साहित्य में विविध विषयों के साथ सूफी विचार का प्रभाव प्रधान रहा। जिन औलियों ने दक्खिनी के द्वारा यहाँ सूफी मत का प्रचार किया, उनमें ख्वाजा बंदे नवाज़ का नाम प्रमुख हैं।

सूफी विचारधारा की मूलभूत धारणा प्रेम, सहिष्णुता. विश्वास और उदारता रही है। इन विचारकों ने सामान्य चिंतन प्रणाली से ऊपर उठकर सत्य को पहचानने की चेष्टा की। मूलभूत सूफी विचारधारा में उपनिषदों का रहस्यवाद, बौद्धों का शून्यवाद और शंकराचार्य के अद्वैत का प्रभाव मिलता है। इस्लाम के उदय के साथ सूफी विचारधारा के अनुयायियों ने अपने आप को संगठित करके इसे सांप्रदायिक रूप प्रदान किया। ऐतिहासिक परिवेश में देखें तो स्पष्ट है कि इस्लाम के उदय के 100 वर्ष के भीतर ही सूफी विचार प्रणाली ने अनगिनत अनुयायी बनाए। इन विचारकों ने ईश्वर की साधना के लिए जहाँ जो विचार अनुकूल लगे उन्हें ग्रहण किया। समय-परिवर्तन के साथ इस संप्रदाय की धारणाओं में भी परिवर्तन आए।

फारस की इस विचार प्रणाली के लोग सूफी नाम से संबोधित होते रहे। इन मनीषियों का समुदाय बना। कुछ आलोचकों का मंतव्य है कि ये विचारक एक विशेष परंपरा में जुड़े हुए थे जो एक श्रेणी-सफा में बंधे होते थे। अतः सफा, श्रेणी से सूफी नाम पड़ा। कुछ मानते हैं कि ये मतावलंबी स्वच्छ - साफ रहते थे अतः साफ से सूफी नाम आया। कुछ आलोचकों ने इसे 'सोफिया' रंग के वस्त्र पहनने के कारण का नाम सूफी बताया। सूफी सांप्रदायिक अनुयायियों ने इस बात का प्रचार किया कि लोग परंपरा

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

का अंधानुकरण न करें। अंधविश्वास को मान्यता न दें। प्रेम-भक्ति की पराकाष्ठा में ईश्वर से एकाकार की अनुभूति होती है। इस महामिलन–महा. निर्वाण को फना कहा। क्रमशः इस विचारधारा की निश्चित मान्यताएँ आईं और मुख्य सिद्धांत बने।

लगभग 7वीं शताब्दीं में सूफी संत भारत में आए। इनकी चार प्रमुख शाखाएँ भारत के विभिन्न स्थानों में स्थापित हुईं। सिंध प्रदेश में सुहरावर्दी शाखा के सूफी आए। चिश्तिया शाखा के प्रवर्त्तक ख्वाजा अबू अब्दुल्ला चिश्ती शाहबुद्दीन गौरी के साथ आकर अजमेर में बस गए थे। शेख अब्दुल क़ादरी ने बगदाद में कादरियाँ शाखा को स्थापित किया जिस का प्रभाव कश्मीर तक प्रसारित हुआ। दक्खिन में सूफी विचारधारा को प्रसारित करने वालों में अब्दुल कादर जिलानी के अनुयायी थे।

दक्खिनी के सूफी साहित्यकारों को दो कालों में विभाजित किया जा सकता है– 1) बहमनी काल और 2) कुतुब शाही काल। बहमनी काल के प्रमुख सूफी साहित्यकारों में ख्वाजा बन्देनवाज़ गेसूदराज़, मुहम्मद अब्दुल्ला हुसेनी, निज़ामी, मीरांजी शमसुलशाख और शाह अली मोहम्मद गांवधनी के नांम उल्लेखनीय हैं। कुतुबशाही काल में बुरहानुद्दीन जानम' मुहम्मद कुली कुतुबशाह गंवादी, वजही, मुल्ला वजीह आदि प्रमुख हैं।

दिल्ली में तैमूरलंग के अत्याचारों से परेशान हो कर शाह राजू खत्ताल सपरिवार सूफी साधक हज़रत बुरहानुद्दीन गरीब के साथ दक्खिन में आकर दौलताबाद में रहने लगे। शाह राजू के पुत्र ख्वाजा बन्देनवाज़ गेसूदराज, दिल्ली लौटकर ख्वाजा नसीरुद्दीन चिराग़ के शिष्य बने। पुनः दक्खिन लौट कर गुलबर्गा के सुल्तान फिरोज शाह बहमनी के आश्रित रहे। चमत्कारी कार्यों के कारण बन्देनवाज़ हिन्दू और मुस्लिम जनता में बहुत लोक प्रिय हुए। इन की अनेक प्रारंभिक रचनाएँ फारसी में हैं। किन्तु दक्खिन की जनता के लिए आपने "मेराजुल आशकीन", 'हिदायत नामा', 'रिसाला बारह मासा'

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आदि दक्खिनी में लिखीं। ख्वाजा वन्देनवाज़ का मेराजुल आशकीन 19-20 पृष्ठों का गद्य में लिखा हुआ छोटा सा सूफी विचारधारा का ग्रंथ है। इसे डॉ. अब्दुलहक ने ताजप्रेस हैदराबाद से 1925 ई में प्रकाशित कराया था। भाषा और भाव की दृष्टि से यह रचना हिन्दी के निकट जा पड़ती है। पंचतत्वों के विषय में लिखा है– "होर माटी में माटी, माटी में पानी, माटी में आग, माटी में वारा, माटी में खाली इन पाँच अनासरों (तत्वों) का वाजिबुल वजद बूझा तो मारिफत तमाम हुआ। "इस उद्धरण में ईश्वर को पहचानने के लिए पाँच तत्वों को पहचानना आवश्यक बताया गया है।

काव्य साहित्य में ख्वाजा वन्देनवाज़ ने हिदायत नामा, शिकार नामा, और रिसाला बारहमासा दक्खिनी में लिखा है। ईश्वर के प्रभुत्त्व का उल्लेख करते हुए गेसूदराज ने रिसाला बारह मासी में लिखा है।

"मैं आशिक़ उस पीव का, जिनने मुझे जीव दिया है।
ओ पीव मेरे जीव का, जो बुर्क़ा बना है ॥"

अर्थात् ईश्वर का अस्तित्व भक्त के जीवन पर छा जाता है।

हिदायत नामा में लिखा ..

ऊँचा मंदर हर इश्क़ का, कोई क्यों कर पावे।
चारों सीढ़ियाँ चढ़ कर तू फिर हारता आवे।

❖ ❖ ❖

वो माशूक़ बेमिसाल है, नूरे नबी न पाया
नूरे नबी रसूल का ओ मेरे जीव में आया।
अपना कूँ देखने कैसी आरसी लाया
खड़े खड़े पीव जीव में आपस कूँ आप दिखाया।"

ईश्वर और भक्त के एकाकार की भावना को अभिव्यक्त करते हुए लिखा है–

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

पानी में नमक डाल मज़ा देखना कैसे
जब घुल गया नमक, नमक बोलना किसे ।

आपकी कविताओं में ईश्वर से एकाकार ईश्वर की प्राप्ति के लिए गुरु का मार्गदर्शन आदि भी सैद्धांतिक बातें आई हैं ।

ख्वाजा कमालुद्दीन बियाबानी के शिष्य शाहमीरांजी शमसुल–उशा दक्खिनी के प्रसिद्ध और लोकप्रिय सूफी साहित्यकार लगभग 1497 ई. में हुए । वे बीजापुर के निवासी थे, पर मृत्यु से कुछ वर्ष पहले शाहपुर में रहने लगे और यहीं उनकी देहांत हुआ । उनकी दक्खिनी में खुशनामा, खुश नगंज़ और शहादतुल हकीक़त प्रसिद्ध सूफ़ी रचनाएँ हैं । इनमें शाहमीशं जी ने ईश्वर के प्रभुत्व, भक्ति की एकाग्रता और गुरु के पथ प्रदर्शन का सुन्दर वर्णन किया है ।

बुरहानुद्दीन जानम ने गुरु के आश्रम में अज्ञान या भ्रम टूटने की बात कही है ।

"इन पाया अनल सुख तो बोलिया अपने मुख
मैं सादित लिया ईमान, सब टुटा मुझ गुमान"

निराकार ईश्वर के विषय में 'खुशनामा' में लिखा है ।

"सिफत करू मैं अल्ला कूं बड़ा जो पूरन पूर
कादिर कुदरत अज्ञातकार, मेरे न दूर ।
ना उस रूप, ना उस देह, ना उस थान मकान
निर्गुन गुनवाला कहाय, किस मुख करूं बखान ।

इसकी एक प्रति हैदराबाद के सालारजंग पुस्तकालय में है और एक प्रति मैं ने इलाहाबाद विश्वविद्यालय के उर्दू प्राध्यापक स्वर्गीय डा. हफीज़ सैयद साहब के पास देखी थी । 'खुश नगंज' में मीरांजी ने प्रश्न-उत्तर की शैली में ईश्वरीय विचार तत्वों को बड़े ही सुन्दर ढंग से समझाया है । इसमें भक्त प्रश्न करता है और कवि अपने उत्तर में ईश्वर के विषय में अपने सूफी विचारों की अभिव्यंजना करता है ।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"खुश पूछे के कहो मीरांजी, आलम अच्छे कीते
पीर कहे सुन, जिले तन अच्छे आलम तीते।"

आगे कवि मीरांजी ने अक़्ल और ईश्क़ के विपय में तर्क करते हुए लिखा है :–

"खुश कहे मुंझ कहो मीरा जी, इश्क़ वड़ा या वूझ।
पीर कही मैं लिखू वयान, इसमें धरना शोध।"

और आगे कवि ने वताया कि यद्यपि वूझ वड़ी होती है, पर इश्क़ के आगे अक्ल का जोर नहीं चलता। प्रेम की भावुकता में तर्क व्यर्थ होता है। अंत में कवि ने वताया कि जो भक्त तर्क रहित एकाग्रता से ईश्वर का ध्यान करता है वही 'वली' हो जाता है।

हिन्दवी भाषा में लिखने के विषय में मीरांजी ने लिखा है :–

"हमी वोल अरवी करे और फारसी वहुतरे
यूं हिन्दवी वोली तब, इस अर्थ भावे सव।
यह भाखा भले सों वोले, मन इन का भाव खोले
के अरबी बोल न जाने, न फारसी पछाने
ये देखत हिन्दी बोल पुनः माइने में मशहूर"

मीरांजी ने "सबरस" नामक ग्रंथ का गद्य में रूपांतरण किया। वजहीउद्दीन गुजराती की फारसी रचना में ईश्वर, भक्त और प्रेम के सैद्धांतिक तत्वों को समझाया गया है।

"इश्क़ साहबे कायनात है। जान वी इश्क़ है तन भी इश्क़ की बात है। शेर भी इश्क़ की बात है। वेपरधाई इश्क़ का घर है। राग इश्क़ का राज है। रग इश्क़ का राहत, कैफियत इश्क़ की जोहर, खुशबो इश्क़ की वास

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हुस्न इश्क़ का जलवा। इस सार से जो कोई मार्का (ज्ञाता) न हुआ वह आशिक़ नहीं खुदा का।"

मीरांजी का गद्य हिन्दी साहित्य के गद्य के विकास की दृष्टि से महत्व पूर्ण है। बुरहानुद्दीन जानम, मीरांजी आदि का गद्य परिमार्जित एवं परिष्कृत है, जिसके कारण हिन्दी गद्य शैली का प्रारंभिक स्वरूप भक्ति काल से बहुत पहले चला जाता है।

बहमनी शासन के समाप्त होने पर दक्खिन कुतुबशाही शासकों के हाथ पड़ा। इसके इब्राहीम कुली कुतुबशाह स्वयं कवि थे। उनके पुत्र मुहम्मद कुली कुतुबशाह ने अपने समय में साहित्यकारों को सम्मानित किया। इन के शासनकाल में दक्खिनी का साहित्यिक विकास चरमसीमा को पहुँचा। कुतुबशाही काल में दक्खिनी केवल बोलचाल की भाषा न रह कर साहित्यिक भाषा का स्थान प्राप्त करती है। इस युग के प्रसिद्ध साहित्यकारों में मुल्ला वजही का नाम सर्वोच्च है।

इन शासकों ने गोलकुंडा को राजधानी बनाया था, और तेलंगाना के सामाजिक जीवन से निकटता अपनाई। इब्राहीम कुली कुतुबशाह की पत्नी एक तेलंगिनी थी जिससे मुहम्मद कुली कुतुबशाह का जन्म हुआ और इसी राजकुमार ने कुतुबशाही शासन की बागडोर संभाली। मुहम्मद कुली कुतुब शाह ने भी तेलंगाना के हिन्दू परिवार की भागमती से विवाह किया था। भागमती के नाम से शहर का नाम भागनगर रखा गया था जो बाद में हैदराबाद हो गया।

मुहम्मद कुली कुतुबशाह का दीवान दक्खिनी का प्रसिद्ध दीवान है। (इस का हिन्दी रूपांतरण स्वर्गीय श्री नसीरुद्दीन हाशमी और मैंने संयुक्त रूप

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

से किया था जो 'दक्खिनी समिति' की ओर से प्रकाशित हुआ) इस दीवान में कवि ने ईश्वर की सूफी विचारधारा के साथ-साथ विभिन्न सामाजिक और सांस्कृतिक विषयों पर भी काव्य रचना की है। सूफी और धार्मिक विचार धारा से हट कर प्राकृतिक सौंदर्य सौष्ठव आदि का विषय चुनकर मुहम्मद कुली ने दक्खिनी साहित्य के क्षेत्र को विस्तृत किया है।

इब्राहीम कुली कुतुबशाह के दरबारी साहित्यकार मुल्ला वजही ने तीन पीढ़ियों के शासकों के आश्रित रह कर दक्खिनी साहित्य की श्रीवृद्धि की। भाषा और साहित्यिक सौष्ठव की दृष्टि से मुल्ला वजही का साहित्य दक्खिनी का परिपक्व साहित्य माना जाता है। इन की पद्य रचना मसनवी-ए-कुतुब का मशतरी का दक्खिनी साहित्य में उल्लेखनीय स्थान है। (इसका हिन्दी रूपांतरण श्री नसीरुद्दीन हाशमी और मैं ने संयुक्त रूप से करके दक्खिनी समिति से प्रकाशित कराया)।

वजही ने स्वयं कुतुब मुशतरी के विषय में लिखा है–

"कुतुब मुशतरो मैं जो बोल्या किताब,
सो हुई जग में रौशन के ज्यू आफताब।
सुनार हो के सुन्ने के लफ्ज़ा गड़या,
तिन मानी चुन चुन के उतन पर जड़या।"

इस पद्य रचना में सूफी सिद्धांत के अनुसार लौकिक प्रेम के आधार पर अलौकिक प्रम की व्याख्या की गई है। राजकुमार कुली कुतुबशाह को प्रेम कथा के आधार पर ईश्वरीय प्रेम के महत्त्व को समझाया गया है। वजही की दूसरी और सर्व प्रसिद्ध रचना दक्खिनी गद्य का परिपक्व उदाहरण 'सबरस' है। इस में वजही ने ईश्वरीय ज्ञान के गहन तत्त्वों को समझाया है–

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"गर्ग भोत नादिर नादिर बाताँ बोल्याँ हूँ। दरियाँ होकर मोतियाँ रोल्याँ हूँ। मोतियों की मौज़ा का मैं दरिया हूँ।" इसमें रचनाकार ने सूफी विचारधारा के अनुसार प्रेम की साधना और साध्य की प्राप्ति को मानवीय प्रेम के आधार पर समझाया है। लौकिक प्रेम से अलौकिक प्रेम की प्राप्ति की सार्थकता को प्रमाणित किया है।

रहस्यवाद के संबंध में विश्व के विभिन्न विद्वानों ने अपने-अपने मत प्रकट किए हैं। इन मतों का अध्ययन करने पर यह निष्कर्ष निकलता है कि मूलतः रहस्यवाद आध्यात्मिक जीवन के अनुभवों और धार्मिक संवेदनाओं की अभिव्यक्ति है। यही आध्यात्मिक अनुभव सूफीवाद का परिचायक है। सूफी साधकों ने अपने 'अनजहक़' अर्थात् 'मैं ईश्वर हूँ' के भाव को प्रधानता दी है। विशिष्टाद्वैतवाद के मतानुसार सूफी साधक भी यही मानते थे कि भक्त और ईश्वर एक होते हुए भी भिन्न हैं, जैसे सागर और उसकी लहरें। भक्त जीवन की यथार्थांओं के माध्यम से ही ईश्वर से एकाकार की अनुभूति करता है। सूफी साधक उस को 'अनलहक़' कहते हैं।

सूफी साधकों में भारतीय साहित्य को बहुत प्रभावित किया। दक्खिन के सूफी साधकों के द्वारा रचित दक्खिनी का साहित्य सूफी विचारधारा से प्रभावित है। सूफी साधक भारत में उस समय आए, जब यहाँ भक्ति भावना का स्रोत प्रवाहित था। यहाँ की भक्ति में विभिन्न विचार तत्व चल रहे थे। एकेश्वरवाद, रामानंद का द्वैतवाद, अद्वैतवाद और विशिष्टाद्वैतवाद के साथ बौद्धों के शून्यवाद और इस्लाम के सूफीवाद ने भारतीय भक्ति साहित्य को प्रमाणित किया। कबीर जैसे साधक कवियों ने विभिन्न धार्मिक तत्त्वों का समन्वय करके एकेश्वरवाद के महत्व को समझाया। दक्खिनी के सूफी लेखकों ने इसी समय सूफी विचार तत्वों को प्रधानता देते हुए विपुल साहित्य की रचना की।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

बुराहनुद्दीन जानम, ख्वाजा बन्देनवाज़, मीरांजी आदि दक्खिनी के साहित्यकारों ने लौकिक जीवन के आधार पर पारलौकिक साधना के महत्व को प्रतिपादित किया। दक्खिनी का साहित्य भक्ति साधना का विपुल भंडार है। भाषा-शैली की दृष्टि से भी दक्खिनी साहित्य की अपनी ही विशेषता है। हिन्दी साहित्य में गद्य के विकास में दक्खिनी साहित्यकारों का बहुत बड़ा योगदान है। इन का गद्य साहित्य 15 वीं शताब्दी में ही परिपक्व अवस्था में आ चुका था। अतः भाषा एवं विचारधारा के आधार पर दक्खिनी साहित्य को हिन्दी के आदिकालीन साहित्य से जोड़ा जा सकता है।

5)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दक्खिनी के ऐतिहासिक काव्य और अलीनामा

डॉ सुरेशदत्त अवस्थी

ऐतिहासिक चरित्रों के नाम पर लिखे जाने वाले काव्य ग्रंथों का सर्वप्रथम रूप हमें शिलालेखों पर खुदी हुई, ताम्रपत्रों पर लिखी हुई प्रशस्तियों में मिलता है जिनका संबंध किसी ऐतिहासिक घटना या व्यक्ति से है। इन प्रशस्तियों का मुख्य उद्देश्य किसी राजा विशेष के महत्वपूर्ण कार्यों का अत्युक्ति पूर्वक वर्णन करना है। कभी-कभी इन प्रशस्तियों में वंशक्रम या अन्य महत्वपूर्ण वर्णन भी मिलते हैं। "प्राय: इन प्रशस्तियों के लेखक साधारण प्रतिभा के ही कवि रहे हैं, परिणाम यह हुआ कि ये प्रशस्तियाँ न तो सुंदर काव्य बन सकीं और न सच्चा इतिहास। तथ्य और कल्पना के मिश्रण की जो प्रथा इन प्रशस्तियों द्वारा स्थापित हुई वह बाद के ऐतिहासिक काव्य लेखकों द्वारा भी स्वीकृत हुई और धीरे-धीरे कठोर तथ्यात्मक सत्यों की अपेक्षा सुखद कल्पना की ओर ही कवियों का अधिक झुकाव होता गया।"[1] इसी संदर्भ में आचार्य द्विवेदी ने भी कहा है कि "ऐतिहासिक व्यक्तियों से संबद्ध काव्य लिखने की प्रथा का प्रचलन संभवत: ईरानियों तथा पश्चिमी सीमांत की जातियों के संसर्ग का ही फल है।[2]"

फ़िरदौसी का "शाहनामा" संसार का प्रसिद्ध ऐतिहासिक काव्य माना जाता है। इसे ईरानी सभ्यता, संस्कृति और पौरुष का जीवंत इतिहास माना

---

1. एस. एन. दास, एस. के. डे.– हिस्ट्री आफ़ संस्कृत लिटरेचर पृ. 346
2. हज़ारीप्रसाद द्विवेदी– हिन्दी साहित्य का आदि काल पृ. 76

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

जाता है। दूसरी ओर, "ऐतिहासिक काव्य की दृष्टि से भारत का सबसे महत्वपूर्ण ग्रंथ कल्हण की "राजतरंगिनी" है। इस काव्य-ग्रंथ को कीथ ने प्रथम भारतीय इतिहास ग्रंथ तथा कल्हण को प्रथम भारतीय इतिहास लेखक माना है।"[3]

ऐसिहासिक काव्यों का उद्देश्य जनता में जागरूकता का निर्माण करना ही नहीं अपितु राष्ट्रीय भावनाओं के निर्माण में सक्रिय सहयोग देना भी है। यह काव्य हमारे सुप्त आवेगों को जीवित करते हैं। हममें शक्ति का संचार करते हैं ताकि कठोर परिस्थितियों का सामना किया जा सके। हमें ज्ञात है कि आज का युग तलवार ढाल का युग नहीं फिर भी हमारी स्मृति में छत्रपति शिवाजी या महाराणा प्रताप का चर्चित स्वरूप हमारा मनोबल बढ़ाने में समर्थ होता है। इतिहास व्यक्तियों या नरेशों का नहीं होता, परिस्थितियों का होता है। इसी उद्देश्य को लेकर ऐतिहासिक वीर काव्यों की रचनाएँ की गई। वीरकाव्यों का इतिहास देश के मनोबल का इतिहास है। कवि अतीत के गौरवशाली इतिहास को वाणी प्रदान कर कृतार्थ हो जाता है। ऐतिहासिक काव्य का इशारा हमेशा वर्तमान तक तो आना ही चाहिए। जब किसी जाति का अतीत महान् होता है, उसकी उपलब्धियाँ विशाल होती हैं, तब वह जाति भविष्य की क़ीमत पर अतीत में शरणार्थी हो जाती हैं। इस अर्थ में ऐतिहासिक काव्य का उद्देश्य महत्वपूर्ण हो जाता है।

वीर काव्यों के नायक ऐतिहासिक चरित्र थे इसलिए कवियों ने अपने चरित नायकों के संबंध में जो कुछ लिखा उसमें इतिहास जाने-अनजाने, प्रत्यक्ष-अप्रत्यक्ष रूप से परिलक्षित होता है। तत्कालीन इतिहास इन वीर काव्यों में बिखरा हुआ है। ध्यान इस बात पर दिया जाए कि ये वीरकाव्य पहले काव्य हैं फिर इतिहास।

वास्तव में वीरकाव्यों को हिन्दी साहित्य में अन्य काव्यों के समान जो आदर मिलना चाहिए वह नहीं मिला शायद उनकी प्रामाणिकता के संबंध

3. गोविंदजी– हिंदी के ऐतिहासिक उपन्यासों में इतिहास प्रयोग पृ. 85

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

में जो विवाद हुए वही संभवतः इसका कारण होगा। दक्खिनी के ऐतिहासिक काव्य इस दोष से पूर्णतया मुक्त हैं।

दक्खिनी के ऐतिहासिक काव्यों के अंतर्गत एक ऐसे काव्य की चर्चा की जा रही है जिसकी पांडुलिपि भारत में फ़ारसी लिपि में भी उपलब्ध नहीं है और यह संभवतः दक्खिनी की प्रथम ऐतिहासिक मसनवी है। उर्दू के प्रसिद्ध विद्वान डॉ. जमील जालवी (भूतपूर्व कुलपति, कराची विश्वविद्यालय, पाकिस्तान) ने इस काव्य का उल्लेख "दीवान हसन शौकी" में किया है। "फतह- नामा निज़ाम शाह" दक्खिनी का प्रथम ऐतिहासिक काव्य है। इसका रचना काल 972 हि. है–

मुबारक तुजे तख्त हौर ताज अछो
कि जब लक दुनिया में तेरा राज अछो
सदा सीस पर तुज छतर छाँव अछो
कि जीता अबद लग तेरा नाँव अछो
कि नौ सौ बहत्तर थे हिजरत के साल
दिया फतह उसी रोज़ जफ़र जुअल जलाल
सदा जीवो राजे जनम राजकर
बसे लग दुनिया नित नवे काज कर (बैत: 615)

दक्खिनी हिन्दी के विद्वान देवीसिंह चौहान के मतानुसार, "युद्ध और राज कारण पर लिखा गया यह ग्रंथ न केवल दक्खिनी हिन्दी का प्रथम काव्य है बल्कि ब्रज, अवधी राजस्थानी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं में लिखा हुआ भी कोई ऐसा ग्रंथ आज तक हमारे सामने नहीं आया।"[4]

(आदरणीय डॉ. जमील जालबी की कृपा से यह दीवान मुझे प्राप्त हुआ, जिसे लिप्यांतरित कर मैं ने अपने शोध में सम्मिलित किया।)

4. देवीसिंह चौहान– इब्राहीम नामा, भूमिका, पृ. 66

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

काव्य का मुख्य वृत्त दक्षिण के प्रसिद्ध "तालीकोट युद्ध" से संबंधित है। यह युद्ध विजयनगर के राजा रामराज और दक्खिन के पांच बादशाहों के बीच हुआ, क्योंकि हसनशौकी अहमद नगर के निज़ामशाह का दरबारी कवि था, इस लिए उसने काव्य का नाम "फ़तहनामा निज़ामशाह" लिखा।

यह मसनवी 620 बैंत (द्विपद) पर आधारित है। अन्य मसनवियों की भाँति इसका प्रारंभ भी मंगलाचरण से किया गया है। फिर पैगंबर की स्तुति की गई है—

इलाही करम का करनहार तूं
है अव्वल व आखर रहनहार तूं
यकस ते यकस कूं किया नामदार
खुदा की सिफ़त कूं न कुछ अंतयार (बैंत: 5-9)

परंपरानुसार सर्ग के शीर्षक फ़ारसी में हैं—

1. रामराज, निजामशाह, आदिलशाह (प्रथम), कुतुबशाह व बरीदशाह का युद्ध प्रारंभ (बैंत: 11-56)
2. निज़ामशाह से युद्ध करने हेतु रामराज का अपने मंत्रियों से परामर्श करना (बैंत: 57-124)
3. मंत्रियों का रामराज को निज़ामशाह से युद्ध करने की सम्मति देना (125-149)
4. रामराज का निज़ामशाह को पत्र लिखकर अमूल्य वस्तुओं की मांग करना (150-231)
5. निज़ामशाह और रामराज का पत्र व्यवहार (232-348)
6. निज़ामशाह का पत्र सुनकर रामराज का पत्रवाहक भेजना (349-391)
7. निजामशाह से युद्ध के लिए प्रयाण (392-449)
8. रामराज की पराजय और निजामशाह की जीत (449-620)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कवि ने रामराज एवं निजामशाह का परिचय देते समय हिंदू एवं इस्लाम धर्म के नेताओं का नाम लिया है। कवि ने दोनों के बीच व्याप्त वैर भाव का खुलकर वर्णन किया है। रामराज के दरबार का वर्णन करता है तो हुसैन निज़ामशाह के कार्यों की भर्त्सना करता है। इसलाम धर्म पर आक्षेप करता है तो दूसरी ओर हुसैन निज़ामशाह के दरबार के चित्र में रामराज को अपमानित करता है

उसे पीर बल हौर तुजे वीर बल
जहाँ पीर बल तो कहाँ बीर बल
सो तूं पीर हौर राम सो बीर है
सो तूं शेर हौर राम ख़नज़ीर है
तू अलमास हौर राम पारवान है
तू इन्सान हौर राम हैवान है (302-4)

दूसरी ओर रामराज भी निज़ामशाह से घृणा करता है, वैर भाव को बढ़ावा देते हुए कहता है–

न तुरकाँ को छोडूं न तुरकीं कमाँ
अगर कीयो रूस्तुम ही हाज़र ज़माँ
× × × ×
करूं दूर बुनियाद इस्लाम की
जो माने दुराहे जगत राम की
मैं राम, बलराम, लखमन हूं मैं
जो यकमन है बहरी तो लख मन हूं मैं

काव्य का अंतिम सर्ग विस्तारपूर्वक लिखा गया है। इस सर्ग में बड़े घमासान युद्ध का वर्णन ओजपूर्ण भाषा में किया गया है। इसके पश्चात् रामराज का वध और लूटमार का वर्णन है और अंत में इसलाम की जीत बताई गई है। युद्ध रामराज और निज़ामशाह का न होकर हिंदू और मुसलमान के बीच

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हो जाता है। इतिहास और काव्य में यही अंतर है। इतिहास तथ्यों को प्रस्तुत करता है तो काव्य में कवि की इच्छाएँ इतिहास माध्यम से प्रकट होती है। ऐतिहासिक काव्यों में ऐतिहासिक तथ्यों की प्रमाणिकता की परीक्षा करना अत्यंत आवश्यक है। काव्य में वर्णित तथ्य, युद्ध का कारण, दोनों का पत्र व्यवहार, रामराज का मूल्यवान वस्तुओं की मांग करना आदि घटनाओं का उल्लेख इतिहास सम्मत है परंतु कवि ने रामराज की पराजय के महत्वपूर्ण कारण को चतुराई से प्रकट नहीं किया।

"जब दोनों सेनाएँ लड़ते लड़ते मिल गई तो लड़ाई बहुत कम समय तक चली। लड़ाई चार घंटे भी न चल सकी क्योंकि लड़ाई ज़ोरों पर थी तो विश्वासघाती कप्तानों ने अपनी सेना के साथ अपने राजा की ओर से मुंह मोड़ लिया और शेष सेना में भगदड़ मच गई, वह मैदान छोड़कर भाग खड़ी हो गई।[5] उक्त घटना का उल्लेख हे राजपरचाज़ की "हिज़ पिलग्रिम", बरजस की "दिराश्ज़" फेड्रिक सीज़र की "अरविड़ू डायनासिटी" में मी मिलता है।

किस प्रकार महत्वपूर्ण घटनाओं को कवि चुपचाप नज़रअंदाज़ कर-देता है। ऐसे समय हम कवि को पक्षपाती होता देखते हैं।

अब बीजापुर के दो ऐतिहासिक काव्यों - 1) अब्दुल का 'इब्राहीम-नामा' और 2) नुसरती का 'अलीनामा' का ऐतिहासिकता के आधार पर मूल्यांकन किया जा रहा है। इन में एक ऐतिहासिक काव्य है तो दूसरा प्रसिद्ध ऐतिहासिक वीर काव्य है। अब्दुल और नुसरती के आश्रयदाता इब्राहीम आदिलशाह और अली आदिलशाह दोनों भी कवि रहे हैं। इनके उपनाम 'जगत गुरू' और 'शाही' हैं। इनके काव्यसंग्रह का संपादन डॉ. नज़ीर अहमद ने 'नौरस' किया (उर्दू में) और डॉ. श्रीराम शर्मा एवं मुबारिजुद्दीन रफ़त ने 'अली आदिल-शाह का काव्यसंग्रह' के नाम से इसका संपादन किया है।

---

5. नीलकंठ शास्त्री– जुनूबी हिंद की तारीख़ पृ. 342

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

'इब्राहीमनामा का रचनाकाल 1020 हि. अर्थात् 1611 ई. है। इब्राहीम आदिलशाह इस्लाम धर्म का अनुयायी था। उसने अपने गीतों में गुलबर्गा के प्रसिद्ध सूफ़ी संत ख्वाजा बंदेनवाज़ गेसूदराज़ का नाम बड़े आदर से लिया है। "परंतु उसने मुहम्मद पैगंबर या अल्लाह का नाम कभी विशेष आस्था से नहीं लिया। इसके विपरीत गणपति, सरस्वती, महादेव इत्यादि हिंदू देवी-देवताओं को भावपूर्ण श्रद्धा से याद किया है।"[6]

संपूर्ण काव्य 712 बैतों पर आधारित है। परंपरानुसार सभी शीर्षक फ़ारसी में है। इसका छंद क़सीदा है और शैली मसनवी की है। इब्राहीम आदिल शाह के गुणगान में अतिशयोक्ति नहीं है। इतिहास और कल्पना के मेल की मात्रा भी अधिक नहीं है।

इस काव्य में अध्यात्म के भी दर्शन होते हैं। इसके अतिरिक्त विद्यापुर (बीजापुर) नगर की प्रशंसा की गई है। नगर के बाज़ारों, प्रासादों और उनकी वैभव-संपन्नता का विस्तारपूर्वक वर्णन मिलता है। यह काव्य चरित्र प्रधान है। बादशाह का 'नौरस महल', उसका न्याय, उसकी साहित्यिक रुचि, श्रृंगार प्रियता का विशद वर्णन है। इस काव्य में किसी युद्ध का वर्णन नहीं है। वैसे नरेश को अनेक कठिनाइयों का सामना करना पड़ा परंतु कवि ने कहीं उस रूप का उल्लेख नहीं किया। इस काव्य में बीजापुर नगर ने वास्तुकला के क्षेत्र में जो उन्नति की उसका संपूर्ण ब्योरा 'इब्राहीम नामा' मे मिलता हैं, परंतु तत्कालीन शासन विधियों, आर्थिक और सामाजिक जीवन को प्रस्तुत करने में कवि उतना उत्सुक दिखाई नहीं देता है।

ऐसा नहीं है कि उसके शासन काल में युद्ध नहीं हुए। इसने कामिलखाँ को समाप्त किया। 1029 हि. में बीदर पर आक्रमण कर अंतिम

---

6. देवीसिंह चौहान– इब्राहीम नामा, पृ. 34

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

बरीद को कैद किया। मालिक अंबर से 1033 हि. (1623 ई.) में परास्त हुआ। पर इन बातों का कोई उल्लेख काव्य में नहीं मिलता। इसे आप ऐतिहासिक काव्य कह सकते हैं पर ऐतिहासिक वीर काव्य नहीं।

दूसरा दक्खिनी का श्रेष्ठ ऐतिहासिक वीर काव्य है नुसरती का 'अली नामा'। बीजापुर नरेश अली आदिलशाह द्वितीय के शासन काल से संबंधित यह महाकाव्य दक्खिनी साहित्य में विशेष महत्व रखता है।

नुसरती ने बीजापुर के तीन बादशाहों का समय देखा था – मुहम्मद आदिलशाह, अली आदिलशाह (द्वितीय) एवं अंतिम नरेश सिकंदर आदिलशाह। इनकी पहली रचना 'गुलशने इश्क़' सूफी प्रेमाख्यान है। दूसरी 'अली नामा' और तीसरी "तारीख-ए-इस्कंदरी"। ये रचनाएँ ऐतिहासिक काव्य हैं।

नुसरती के व्यक्तित्व और कृतित्व के संबंध में बाबाए उर्दू मौलवी अब्दुल हक़ साहब ने "मुल्ला नुसरती" में विशद व्याख्या की है और डा. श्रीराम शर्मा ने भी इस कवि के जीवन और अलीनामा के संबंध में बड़े व्यापक रूप में अपनी पुस्तक "दक्खिनी हिन्दी का साहित्य" में चर्चा की है (पृ. 205-237)। उन्हों ने 'अली नामा' की ऐतिहासिक पृष्ठभूमि, कथावस्तु अलीनामा और देशभक्ति वीरता वर्णन, इतिहास और कविता, छंद योजना, नुसरती और हिंदु जीवन आदि शीर्षकों द्वारा काव्य का वास्तविक मूल्यांकन किया है।

उनकी जाति के संबंध में अब्दुल हक़ साहब ने लिखा कि "गार्सा द तासी ने 'गुलशने इश्क़' के एक क़लमी नुस्खे (हस्तलिखित प्रति) की सनद पर जो कांजीवरम में लिखा गया था उसे बिरहमन बताया है।"[7] इस प्रेमाख्यान काव्य की कांजीवरम की हस्तलिखित प्रति किसी के देखने में नहीं आई परंतु बाबाए उर्दू ने जिस आधार पर उनकी जाति निर्धारित की वह युक्ति संगत नहीं जान पड़ती।

---

7. अब्दुल हक़–मुल्ला नुसरती पृ. 6

6)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

बहम्दुल्ला कुर्सी व कुर्सी
चली आई है बंदगी में तेरी

गेसूदराज़ के संवंध में लिखी गयी नुसरती की यह पंक्तियाँ उनकी जाति को निर्धारित नहीं करती। आज भी सैकड़ों विभिन्न जातियों एवं धर्मों के अनुयायी इस सूफी संत के भक्त हैं।[8] (देवनागरी में मैंने 'तारीख़ इस्कंदरी' संपादित की है, जिसे आं. प्र. हिन्दी अकादमी ने प्रकाशित किया है। इंसमें मैं ने इनकी जातिके संबंध में विस्तार मे चर्चा की है। नुसरती ने इसलाम स्वीकार किया था। गार्सा द तासी के कथन की पुष्टि "इनसाइक्लोपीडिया ब्रिटानिका" में मिलतो है। इसका उल्लेख डॉ· श्रीरामशर्मा ने भी किया है (उर्दू शहयारे पृ. 59 डॉ. ज़ोर)।

इनकी मृत्यु के संवंधमें अब तक यह धारणा थी कि वे 1085 हि. में शहीद हुए पर डॉ. जमील जालवी के अनुसार नुसरती के ईर्ष्यालुओं ने षड्यंत्र के द्वारा उन्हें मौत के घाट उतार दिया।[9]

'अलीनामा' अली आदिलशाह के शासन काल का जीवंत इतिहास है। इसकी कथावस्तु अनेक शीर्षकों में विभक्त है। शीर्षक फ़ारसी में नहीं हैं। इनका एक ही छंद है और वे 'ल' पर समाप्त होते हैं। यदि शीर्षकों का संकलन किया जाए तो एक क़सीदा बनता है और काव्य की कथावस्तु प्रस्तुत करता है। मंगलाचरण से काव्य प्रारंभ होता है

सिराना सिरे इस सकतधार कूँ
किस आधार है इस निराधार कूँ

(अलीनामा: पृ. 1)

सालार जंग संग्रहालय हैदराबाद में यह काव्य मसनवी के अंतर्गत न होकर 'इतिहास कला' के अंतर्गत है। इस काव्य में बीजापुर के 15 वर्षों का इतिहास है—

---

8. श्रीराम शर्मा– द· हिंदी का साहित्य, पृ. 237
9. जमील जालवी– तारीख उर्दू अदब, पृ. 335

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

पकड़ अस्ल तारीख़ लिखत्यां की चाल
लिख्या किस्सा दर किस्सा हर वेहाल (अलीनामा: 424)

इस काव्य का संपादन फ़ारसी लिपि में इतिहास के प्रोफ़ेसर डा. अब्दुल मजीद सिद्दीकी ने किया है। काव्य में कहीं घटनाओं का संवंध टूटता नहीं। जब कवि इतिहास को काव्य का विषय बनाते हैं तो प्रायः बहुत कुछ परिवर्तन कर देते है। अनचाहे तथ्यों को छोड़ देते हैं। परंतु नुसरती ने 'अलीनामा' में काव्य और इतिहास का समन्वय सफलतापूर्वक किया है। इसमें प्रत्येक छोटी-बड़ी घटना का उल्लेख जितना विस्तारपूर्वक किया गया है उतना किसी इतिहास ग्रंथ में भी नहीं मिलता। इतिहास से काव्य में वर्णित घटनाओं का मेल करने पर हम पाएँगे कि इसमें ऐसी प्रामाणिक घटनाओं का उल्लेख है जिसे इतिहास भी प्राप्त नहीं कर सका। बीजापुर के इतिहासकारों ने "अलीनामा" से लाभ उठाया है। "हिस्ट्री आफ़ बीजापुर" के लेखक डी. सी. वर्मा ने "अलीनामा" से संदर्भ दिया है।[10] "बसातीन उल् सलातीन" के लेखक इब्राहीम जुबैरी ने अलीनामा और नुसरती का उल्लेख किया है। ऐतिहासिक पृष्ठभूमि को नुसरती ने जिस गहराई तक समझा उतना "तारीख़ आदिल शाहिया" के लेखक नूरुल्ला ने भी नहीं समझा। 'अलीनामा में बयालीस अध्याय हैं जिसमें 5253 बैत हैं। मसनवी और कसीदा छंदों का ही प्रयोग हुआ है। इसमें आदिलशाह द्वितीय की आठ लड़ाइयों का वर्णन है। "मराठों की बढ़ती हुई शक्ति का अनुमान नुसरती को है।"[11] अनेक इतिहासकारों ने शिवाजी को अली आदिलशाह का प्रमुख शत्रु बताया है, पर वास्तव में ऐसा नहीं है–

दोनों भार हमतोल थे यूं मगर
सिव्या इनमें पासंग का था फतर

(अलीनामा: 282)

10. डी. सी. वर्मा– हिस्ट्री आफ़ बीजापुर, पृ. 160-61
11. देवीसिंह चोहान– नूरुल्ला आणि नुसरती-लेख

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

वर्षों से मुगलों ने दक्षिण के राज्यों को हस्तगत करना चाहा।

मुग़ल किस सूं हरगिज़ किया नइं वफ़ा
कि नइं तिस ज़ुबान सारका दिलसफ़ा

(अलीनामा: 362)

नुसरती ने शिवाजी के पराक्रम की प्रशंसा भी की है और विश्वासघात की भर्त्सना भी। उसने कहीं भी पक्षपात का आश्रय नहीं लिया। यही उसकी बड़ी विशेषता है। देशभक्ति उनमें कूट कूट कर भरी हुई है। वह दक्खिनी सैनिकों की वीरता की प्रशंसा करता है—

मुग़ल आके अव्वल जोलत खाते हैं
दकन की लड़ाई ते कंदराते हैं
दकन की मुहिम पर तजो रोज़गार
कि जनहार नई वो आने की ठार

(अलीनामा: 237)

मुग़लोंके आक्रमण पर कहता है—

हमन घर पो कुरुप आ मुग़ल सा ग़नीम
चल्या है बद अंदेश होकर अज़ीम
अच्छी जस हो मीरास हुब्बुल वतन
उने जीव दे घर कं रखना जतन

(अलीनामा: (257)

इसका नरेश और आक्रमाणी दोनों एक ही धर्म से संबंधित है फिर भी आक्रमणकारियों के प्रति उसका आक्रोश दर्शनीय है। मुग़लों के प्रति कहता है—

मुरव्वत के मुफ़लिस मुहब्बत के शोभ
फ़िरासत को तूती नहूसत को बोभ

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

फ़रेब इनके फ़न में बड़ा विरद है
जनम जग का इबलिस शागिर्द है
ठगानैंच दुनिया को मादर कहें
छियालोड़ ज़ाहर कूं ख्वाहर कहें
देखै कुच है जां फ़ायदा आप कूं
न छोड़े सगे भाई हौर बाप कूं

अपने सैनिकों को कहता हैं–

बदी बापसूं अपनी मीरास जान
बिरादर का खूं शीर मादर पछान

(अलीनामा: 277)

इन्हीं पंक्तियों के आधार पर नुसरती के प्रभावपूर्ण व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जा सकता है।

इस प्रकार हम देखते है कि नुसरती का 'अलीनामा' काव्य दक्खिनी के समस्त ऐतिहासिक वीरकाव्यों में इतिहास से भी अधिक प्रामाणिक और प्रभावशाली काव्य है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दाक्खिनी हिन्दी के रूपक-कथा-काव्य

डॉ. नूरजहाँ बेगम

साहित्य की प्रत्येक प्रवृत्ति और उसके काव्य रूप की एक परंपरा होती है। शोधकर्ता लुप्त परंपराओं के अन्वेषण और जीवन परंपराओं की पुनर्व्याख्या तथा नवीन अर्थों के समावेश से परंपरा को पुनर्जीवन प्रदान करता है। यदि परंपरा रूढ़ नहीं हो गई है तो उस को साहित्यकार अपने सृजन के स्पर्श से सार्थक बनाता रहता है। ऐसी ही एक जीवंत परंपरा रूपक कथा काव्य की रही है। इसकी यात्रा भारत एवं पाश्चात्य देशों में आदिम मानस से लेकर आज के सुसंस्कृत और सभ्य मानस तक होती रही है। द्वयअर्थक काव्य- शिल्प पर आधारित इस काव्य रूप का भारतीय विद्वानों ने अनेक प्रकार से नामकरण किया- प्रतीक काव्य अथवा नाटक अन्योक्ति, समासोक्ति अध्यवसित कथा काव्य आदि। किंतु इन सब में इस विशेष शैली का समग्र रूप आत्मसात न हो सका। आज अंग्रेजी के एलिगोरी (Allegory) शब्द का हिन्दी रूपांतर रूपक-कथा काव्य प्रचलित हो गया है। पाश्चात्य साहित्य में इस शैली का प्रादुर्भाव ग्रीक एव रोमन में धार्मिक भावों में हुआ। भारतीय वाङ्मय में वैदिक युग का संहिता - साहित्य आदिम मानव के पूर्ण संस्कार को लिये हुए है। ऋषि मानस "हृदय" को कभी भौतिक और कभी भौतिकोत्तर संदर्भों में व्याख्यायित करता रहा। प्रवृत्ति एवं समाज की विभिन्न घटनाओं को रूपक पद्धति से समझने का और प्रेषित करने का आयोजन ऋषि मानस ने किया। प्राकृत्तिक व्यापारों का यह रूपकपरक व्याख्यान स्वाभाविक दृष्टि से होता था जिसमें धार्मिक भाव एवं सामाजिक भाव दोनों अनुस्यूत होते थे। यह योजना रूपक कथा काव्य की आदि कड़ी के रूप में

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

तिष्ठित है। रूपक कथा की परंपरा ब्राह्मण, उपनिषद तथा पुराणों में विकसित हुई। रूपक काव्य का विकास संस्कृत तथा जैन ग्रंथों से होता हुआ हिन्दी में प्रविष्ट हुआ। उपमिति भव प्रपंच कथा सिद्धर्षि सूरि कृत तथा प्रवोध चन्द्रोदय की परंपरा ने हिन्दी साहित्य को अत्यधिक प्रभावित किया।

इस शैली का अत्यधिक विस्तृत फलक हमें सूफ़ी साहित्य में दिखाई देता है। संप्रेषण का सिद्धांत है कि सूक्ष्म को स्थूल उपकरणों के माध्यम से ही संप्रेष्य बनाया जा सकता है, अतः सूफी साहित्य के सूक्ष्म दार्शनिक भावों का संप्रेषण स्थूल लौकिक कथाओं के माध्यम से किया गया। इस काव्य रूप की मूलधार कथा चाहे नाटकीय संवेदना का रूप ले ले, चाहे प्रकृतिगत शुद्ध कथा बनी रहे, किंतु कथा के विना इस काव्य रूप की सिद्धि नही हो पाती। इस कथा के विधान में कवि को जागरूक रहना पड़ता है कि प्रस्तुत और अप्रस्तुत दोनों कथा सूत्र समानांतर रूप से विकसित होते चलें। बाह्य कथा रूप सूक्ष्म कथा रूप को प्रतीक विधान, मानवीकरण और चित्रात्मकता के द्वारा सरसता प्रदान करता रहता है। रूपक-कथाकाव्य का दार्शनिक सामाजिक, नैतिक, मनोवैज्ञानिक कोई एक अथवा उस से अधिक प्रयोजन होता है।

मध्यकाल के साहित्य से यदि सूफी काव्य धारा को निकाल दिया जाए तो रूपक-कथा-काव्य का प्रायः अभाव सा हो जाएगा। ये धारा उत्तर भारत में ही नहीं दक्षिण भारत में भी प्रवाहित रही। बीजापुर और गोलकुंडा के दरबारों में अनेक सूफी कवियों ने इस काव्य रूप को उदात्त धरातल और सशक्त शैली प्रदान की। भाषा की दृष्टि से इन्होंने दक्खिनी हिन्दी का प्रयोग किया और कथा के रूप में फारसो की प्रेम कथाओं को आधार बनाया।

दक्खिनी हिन्दी की कृत्तियों के संबंध में सबसे अधिक विवाद है कि ये कृतियाँ आध्यात्मिक हैं अथवा मात्र लौकिक प्रेमगाथा काव्य। यदि ये कृतियाँ आध्यात्मिक नहीं हैं तो रूपक-कथा काव्य भी नहीं हो सकतीं। यह

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

विवाद डॉ. श्रीराम शर्मा जी के इस कथन से उत्पन्न हुआ है– "यहाँ पर प्रेमाख्यान शब्द का प्रयोग उस अर्थ में नहीं हुआ है जिस अर्थ में वह हिन्दी साहित्य के इतिहास में होता रहा है। हिन्दी साहित्य में यह शब्द उन काव्यों के लिए प्रयुक्त हुआ है, जिनमें प्रेम का अलौकिक रूप लौकिक रूप से आच्छादित है। दक्खिनी में इस प्रकार के रहस्यगर्भित प्रेमाख्यान की रचना नहीं हुई है। डॉ. श्रीराम शर्मा ने लगभग दस कृतियों की सूची– मुल्ला वजही की 'कुतुब मुश्तरी' से लेकर मीरा हाशमी की 'यूसुफ जुलेखा' तक दे दी– और घोषित कर दिया कि ये अलौकिक काव्य नहीं है। किन्तु इसी पुस्तक (दक्खिनी हिन्दी का साहित्य) में अन्यत्र इनमें से ही कुछ कृतियों के संबंध में कहते हैं कि गुलशन इश्क में "मनहर कुंवर की यात्रा सूफी साधकों की आध्यात्मिक यात्रा का प्रतिरूप माना जा सकता है।" दक्खिनी के सूफी साहित्य के आलोचकों में पं राहुल सांस्कृत्यायन, पं परशुराम चतुर्वेदी आदि ने एक मत होकर दक्खिनी हिन्दी की मसनवियों का प्रधान स्वर आध्यात्मिक माना है। रूपक-कथा-काव्य की दृष्टि से निज़ामी कृत 'कदमराव पदमराव', मुल्ला वजही कृत 'सबरस' और 'कुतुब मुश्तरी', ग़वासी कृत 'सैफुलमुल्क' व 'बदी उल्जमाल', आजिज़ कृत 'लैला मजनूं', शेख अहमद जुनैदी कृत 'माहपेकर' मुल्ला नुस्रती कृत 'गुलशने इश्क', इब्ने निशाती कृत 'फूल बन' मीराहाशमी कृत 'यूसुफ जुलेखा', इशरती कृत 'दीपक पतंग' और 'चित्त लगन', हुनर कृत 'नेह दर्पण', वजही उद्दीनवज्दी कृत 'पंछी बाछा' और 'मख़जने इश्क', सिराज औरंगाबादी कृत 'बूस्ताने ख्याल', हातिम कृत 'किस्सा हुस्नोदिल' का महत्वपूर्ण स्थान है।

उपर्युक्त कृतियाँ के अध्ययन में अत्यधिक कठिनाई इसलिए है कि इनमें अधिकांश हस्तलिखित प्रतियाँ सालारजंग संग्रहालय, हैदराबाद स्टेट सेंट्रल लाइब्रेरी, उस्मानिया विश्वविद्यालय लाइब्रेरी, हैदराबाद, नेशनल लाइब्रेरी कलकत्ता तथा हिन्दुस्तानी अकादमी, फैजाबाद में उपलब्ध है किंतु विभिन्न रूपों में। इनके पाठालोचन की आवश्यकता है। फारसी लिपि में वास्तव में कुछ अधिक कृतियों का संपादन और प्रकाशन हो चुका है, किंतु नागरी लिपि और हिन्दी में बहुत कम।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

विस्तार भय से उदाहरण स्वरूप ही कुछ कृतियों के रूपकपरक पक्ष पर चर्चा करना यहाँ अपेक्षित होगा। ये कृतियाँ कहीं प्रतीकात्मक तथा कहीं मानवीकृत रूप में अपने रूपकत्व को सिद्ध करती हैं, किंतु पद्मावत की भाँति अधिकांश कृतियाँ प्रतीकात्मक ही हैं और मानवीकृत अपेक्षाकृत कम।

फारसी कथाओं में जहाँ स्त्री के प्रति पुरुष की आसक्ति सामान्य बताई गई हैं, वहाँ स्त्री की ओर से पुरुष के प्रति अनुराग प्रदर्शन के उदाहरण भी हैं। जामी की रचना युसुफ़ ज़ुलेखा तथा आजिज़ कृत लैला मजनूं इसके प्रबल प्रमाण हैं। अध्यात्म की इस शैली में इस बात का महत्व नहीं होता कि प्रेम किस देश और किस संप्रदाय या किस ओर से है, उनके लिए तो बस साधक के प्रेम का महत्व है। साधक का प्रतीक कभी प्रेमिका हो सकती है और कभी प्रेमी। आजिज़ ने लैला मजनूं के प्रेम को सभी सूफी कृतियों से अलग रखा है। लैला मजनूं का प्रेम न तो गुण स्रवन, न चित्रदर्शन और न ही स्वप्न दर्शन से होता है बल्कि उनका प्रेम जन्मजात और सहजात है। छह-सात वर्ष के बालक-बालिका स्कूल में एक दूसरे को देखते रहते थे-

"दरस का वो दर्पण सो कर सक दिगर,
अपस में अपै देक देक होवे बेखबर।"

दोनों हो अभिन्न आत्मा थे-

"न लैला जुदा हैं न मजनूं जुदा
किया मैं अपस कूं उसी में फ़िदा।"

दक्खिनी सूफ़ी काव्य में आध्यात्मिकता का विरोध करते हुए डॉ. श्रीराम शर्मा लिखते हैं- लैला मजनूं का प्रेम साधना न बनकर साध्य बन गया है। कवि ने यथास्थान इस प्रेम की अलौकिकता का उल्लेख किया हैं।

7)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

मीर हाशमी कृत यूसुफ़ ज़ुलेखा में स्त्री का प्रेम पुरुष के प्रति असीम है। ज़ुलेखा रात में छिप-छिप कर जेल में यूसुफ़ को देखने जाया करती थी। यूसुफ़ इतने सुन्दर है कि जो कोई भी उन्हें देख लेता है, वह प्रेम विह्वल हो जाता है। अतः यूसुफ़ ब्रह्म का प्रतीक है, क्यों कि सौंदर्य ही ब्रह्म है। लौकिक प्रेम तो संसार भर में व्याप्त होता है, किंतु अलौकिक प्रेम कुछ और ही होता है -

"मजाज़ी यकीं इश्क सब ठौर है,
हकीकी वले इश्क कुछ और है।"

नुसरती के 'गुलशने इश्क' में सतही तौर पर लौकिक प्रेम का आभास होता है, किंतु कवि स्पष्ट कर देना चाहता है कि प्रेम के अलौकिक रूप से ही व्यक्ति गंतव्य तक पहुँच सकता है। चंपा का सौंदर्य देखा, तो उसका इश्क मजाज़ी से हकीकी अर्थात् पार्थिव से अपार्थिव तक पहुँच जाता है–

पड़ी उसकी जो कुछ अचंबे नज़र,
मजाज़ी से दौड़ी हक़ीकी उपर।"

सिराज औरंगाबादी कृत 'बूस्ताने ख्याल' एक मौलिक रचना है। इस रचना की कथा पूर्णतः अलग ढंग अर्थात् अमरद परती को आधार बनाया गया है। सिराज का बचपन से ही एक हिन्दू लड़की से प्रेम है और हिन्दू उसे बार-बार सिराज से अलग कर देते हैं। यातनाएँ देते हैं। सिराज विरह में तड़पता रहता है और अंत में कवि कहता है कि इस कथा को हक़ीकी प्रेम हेतु ही गढ़ा गया है–

"जब मजाज़ी कान हो यारो बयाँ,
फिर हकीक़त किस तरह होवे अयाँ।
गो मिसल है ये मजाजी ए अज़ीज,
पर हकीक़त को यहाँ से कर तमीज़।"

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

मानवीकृत रूपकात्मक काव्यों के मुल्ला वजही ने अपनी दो कृतियाँ 'सबरस' और 'कुतुब मुश्तरी' की रचना कुतुबशाह को प्रसन्न करने के लिए नहीं की, बल्कि ईश्वर प्रेम के लिए लौकिक प्रेम के माध्यम से अलौकिक प्रेम की कथा कही है–

"किसे इश्क अव्वल ते यू इश्क बाज,
के मन्धर हकीक़त ही सीढ़ी मजाज"

कुतुब मुश्तरी के सभी पात्र प्रकृति पात्र हैं। प्रकृति के ग्रह नक्षत्रों में ध्रुव, वृहस्पति, मंगल, शुक्र और वुध का महत्वपूर्ण स्थान है। उर्दू-फारसी के शब्दों में नक्षत्रों के रूप में मानवीकृत ही कुत्व (ध्रुव), मुश्तरी (वृहस्पति), मिर्रीख (मंगल), जुहर (शुक्र) और उतारिद (बुध) ये सभी ग्रह और नक्षत्र हैं। उतारिद वुध का प्रतीक है, अर्थात् उसको संसार का सब कुछ ज्ञान है।

"उतारद सो नक्काश का नाम था,
भला होर बुरा सब उसे काम था।"

मिर्रीख (मंगल) और जुहर (शुक्र) का विवाह मंगल का सूचक है। कुतुब और मुश्तरी का विवाह तथा पुनः दक्षिण में आना उनके प्रेम के ध्रुवीकरण को व्यक्त करता है-

"कुतुबशाह होर मुश्तरी शाह मिल,
दकन कूँ सो जाते हुए एक दिल।"

'कुतुब मुशतरी' काव्य द्वारा प्रेम की आध्यात्मिक स्थापना को प्रेम के ग्रह नक्षत्रों के समन्वय के मानवीकरण में किया गया है। लौकिक प्रेम में प्रेमी और प्रेमिका अभिन्न हो जाते हैं, तो अलौकिक प्रेम में साधक और साध्य की भावना निम्न लिखित छंद के 'जाँ वाँ' शब्द में अभिव्यक्त हुई है–

"मुहब्बत कही यूँ सुई नई अहै,
मुहब्बत है जाँ वाँ दुइ नई अहै।"

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

वजही की रचना 'सबरस' यद्यपि गद्य में लिखी गई है, किंतु यह कृति गद्य में होते हुए भी काव्य रस से युक्त है। पं. राहुल सांकृत्यायन ने इसे काव्य कृति मानते हुए लिखा है– "सबरस .. अपने कवितामय गद्य के रूप में विशेष महत्व रखती है।"

'सबरस' का प्रतिपाद्य अमृत प्राप्ति है। अमृत क्या है? सूफियों की परिभाषा में अमृत तत्त्व फ़ना होना है। वजही का कथन है, अमृत कुंड हुस्न के रुखसार (आकृति) में है। फ़ना होने से तात्पर्य साधक सौंदर्य पर इस प्रकार अनुरक्त हो जाए कि अपनी सुध-बुध खो बैठे। सूफी दर्शन में जीव की दो स्थितियाँ होती हैं– (1) बक़ा, (2) फ़ना। बक़ा की स्थिति रूप के ज्ञान को है और फ़ना की स्थिति में अपनापन समाप्त हो कर तादात्म्य की स्थिति में आ जाना है। इस प्रतिपाद्य को हुस्न (सौंदर्य) और दिल (हृदय) के शाश्वत संबंधों की अप्रस्तुत-कथा के द्वारा कहा गया है। 'सबरस' में वजही ने ईश्वर के स्वरूप (सौंदर्य) को स्पष्ट करके व लौकिक प्रेम को अलौकिक प्रेम का सोपान बता कर जीवन के मुख्य लक्ष्य को भगवत्प्राप्ति ही माना है।

वजहीदुद्दीन वजदी ने 'पंछी बाछा' नामक काव्य लिख कर रूपकात्मकता के माध्यम से आध्यात्मिक चिंतन को प्रकृति से जोड़ा है। 'पंछी बाछा' में पंचतंत्र और हितोपदेश की कहानियों की भाँति पक्षियों को पात्र रूप में चित्रित किया गया है, किंतु इसे उपदेश कथा नहीं कह सकते, क्योंकि इनका प्रयोजन कथा के अंतिम वाक्य से स्पष्ट न हो कर संपूर्ण कथा में व्याप्त रहता है।

इस कृति में कथा के अंतर्गत कथा कहने की प्रवृत्ति है, किंतु हुदहुद पक्षी और अन्य पक्षियों की कथा मुख्य है। यहाँ हुदहुद गुरु का प्रतीक है, जो पथ प्रदर्शक है। अन्य अनेक पक्षी विविध विचारों और आकांक्षाओं वाले व्यक्ति के प्रतीक हैं। सीमुर्ग ईश्वर का प्रतीक है, जिसकी तलाश में गुरू के मार्ग निर्देशन में सभी साधक जा रहे हैं। वे अपने को महान समझने के

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कारण और कष्ट न सहन कर पाने के कारण बीच में साहस छोड़ने लगते हैं, किंतु गुरु उन्हें साहस दिलाता है और गंतव्य तक पहुँचाता है। बुलबुल उस साधक का प्रतीक है, जो इस संसार को ही सब कुछ माने बैठा है-

"जिस घड़ी गुलशन मने खिलता है फूल,
जिव मेरा मस्ती मने जाता है भूल।"

दक्खिनी के रूपक-कथा-काव्य आध्यात्मिक हैं, जिनकी केंद्रीय विशेषता है प्रेम। प्रेम ही सौंदर्य है और सौंदर्य की पूर्णता ब्रह्म में है। एक बात यहाँ ध्यान देने योग्य है कि सूफियों का ब्रह्म मानसिक सगुणवाद में है। न तो वह अवतार है, न ही उसका कोई रूप है। प्रश्न उठता है, जब रूप नहीं तो सौंदर्य कहाँ ? निर्गुणवादियों के साथ उनका साम्य रखते हुए उन्हें उस स्थिति में रखा जा सकता है, जिसमें साधक साध्य (ब्रह्म) का 'नूर' ही आभास कर पाता है। 'नूर' की स्थिति किसी भी रूप में सगुण, साकार अथवा आकार रूप में नहीं होती। यह एक 'जलवा' है, जिसका प्रभाव ही अनुभव किया जा सकता है। उत्तरी तथा दक्खिनी सभी सूफी कवियों के साधक रूप में नायक अथवा नायिकाएँ साध्य (ब्रह्म अथवा प्रेमी या प्रेमिका) को देखते ही मूर्छित हो जाते हैं। साधना की यह मूर्छावस्था कुरान से ही प्रारंभ हुई है। महान साधक हज़रत मूसा के बार-बार आग्रह करने पर खुदा ने ज्यों ही अपना 'नूर' मूसा को दिखलाया, तो वे ताव न ला कर मूर्छित हो गए। 'नूर' का मानसिक आभास 'बका' की स्थिति है तथा उसमें लीन हो जाना अथवा प्राप्त कर लेना फ़ना (तादात्म्य) की स्थिति है। सूफ़ी काव्यों की रूपकात्मक स्थिति की सफलता सृष्टि के कण-कण में प्रियतम परमात्मा का जलवा देखना, उसके प्रेम-विरह में तड़पन, तड़पन में भी आनंद, उसकी प्राप्ति का प्रयत्न, मार्ग की बाधाएं, साक्षात्कार का आनंद तत्पश्चात चिरमिलन में निहित है। इसमें यत्र-तत्र भारतीय योग साधना को भी स्थान दिया गया है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दक्खिनी काव्य में भारतीय तत्व

प्रो. अशरफ़ रफ़ी

ऐतिहासिक, भाषायी और साहित्यिक दृष्टिकोण से दक्खिनी उर्दू अन्य बोलियों से अधिक महत्वपूर्ण है। हमारे देश के विभिन्न प्रांत ऐतिहासिक भौगोलिक, आर्थिक और सांस्कृतिक कारणों से भिन्न दिखाई देते हैं. अतः उर्दू के विकास में भिन्न-भिन्न रूपों का प्रभाव दिखना अवश्यंभावी है। इस पर भी वास्तविकता यह है कि भिन्न प्रांतों को उर्दू अपनी भिन्नताओं को साथ लेते हुए भी एक जैसी दीखती है। दक्खिनी उर्दू भी अपने अंचल में इन विशेषताओं को समेटे हुए है।

उत्तर भारत में मुग़लों के आगमन के बाद विजित और विजयी के बीच आर्थिक एवं सांस्कृतिक तथ्यों को अभिव्यक्त करने के लिए माध्यम के रूप में उर्दू भाषा का जन्म हुआ। इस भाषा के विकास में आर्य भाषाओं, फ़ारसी एवं अरबी के शब्दों का बड़ा हाथ है। उत्तरी भारत में इसे हिन्दवी, हिन्दुस्तानी, ज़बाने हिन्दुस्तान, ज़बाने देहलवी, हिन्दी और उर्दू के नाम दिए गए हैं, परंतु इसी भाषा ने जब दक्षिण भारत की ओर रुख किया तो यहाँ की प्रांतीय भाषाओं अर्थात् मराठी, गुजराती, कन्नड़ एवं तेलुगु का प्रभाव पड़ा और इनके सम्मिलन से इस प्राक् उर्दू को दकन में दकनी का नाम दिया गया।

दक्खिनी उर्दू को यह रूप देने में स्थानीय संतों, साधुओं एवं उत्तर भारत से दक्कन आने वाले सूफ़ियों का महत्वपूर्ण योगदान है। भारतीय संस्कृति में सदैव धर्म को प्रतिष्ठित स्थान दिया गया है। इसलिए प्राचीन

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

काल से साधु-संत समाज में अपनी शिक्षा को व्यापक रूप देने के लिए जनता की ही भाषा का प्रयोग करते थे। जब दक्षिण में दक्खिनी उर्दू का प्रयोग शुरु हुआ तो यहाँ साधु-संतों और सूफियों को भी तत्कालीन भाषा का सहारा लेना पड़ा। शिक्षा, चरित्र-निर्माण और सर्व-धर्म का प्रसारण करने में संतों और सूफियों की दीक्षा का महत्वपूर्ण योगदान रहा। अपनी शिक्षा को अधिक प्रभावशाली बनाने के लिए वे लोग उत्तर भारत की यात्रा करते रहे, जो उस काल में धार्मिक स्थानों और साधु-संतों का महत्वपूर्ण केंद्र था। उत्तर भारत की यात्रा करते समय उन स्थानों की बोलियों से वे प्रभावित होते और दक्कन आने के पश्चात् वहाँ की बोलियों से युक्त नई भाषा का प्रयोग करते थे। यह बात विशेष रूप से ध्यान देने योग्य है कि अधिकांश सूफी और संत केवल धर्म प्रचार ही नहीं करते थे बल्कि स्वयं कवि एवं साहित्यकार भी थे। उन्होंने अपनी रचनाओं के द्वारा दक्खिनी उर्दू को साहित्यिक रूप प्रदान किया और समकालीन जनता को भी इस मार्ग पर आगे बढ़ने के लिए प्रोत्साहित किया।

बहमनी साम्राज्य के पश्चात् दक्षिण में जब आदिल शाही, कुतुबशाही निजामशाही एवं बरीदशाही राज्यों की स्थापना हुई तो जनता की इस भाषा को न केवल शासकों ने अपनाया बल्कि इन शासकों के संरक्षण में इस भाषा ने पूर्व विकास भी किया और इसे स्थायी रूप से पूर्ण साहित्यिक रूप प्रदान किया।

दक्खिनी उर्दू के प्रारंभिक समय में मोहम्मद कुली कुतुबशाह, अहमद-गुजराती, मुल्ला वजही, गव्वासी मुक़ीमी, इब्ने निशाती, इब्राहिम आदिलशाह, अली आदिल शाही, अब्दुल, अमीन, सनती रुस्तमी आदि ने दक्खिनी उर्दू में साहित्य के निर्माण और उसके संवर्धन में महत्वपूर्ण योगदान दिया। दक्षिण के शासक स्वयं विद्वान तो थे ही साथ में वे कवियों तथा साहित्यकारों का संरक्षण भी करते थे। इन शासकों की उदारता उनके व्यवहार में दृष्टिगोचर होती है, जिसके कारण दक्षिण में मिली-जुली और समन्वयकारी संस्कृति

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

का प्रदुर्भाव हुआ। इस तरह दक्खिनी उर्दू अपने प्रारंभिक काल से ही मिले-जुले सांस्कृतिक जीवन को प्रतिविंबित करती रही। भाषायी स्तर पर इसने हिन्दुस्तानी और हिन्द-ईरानी वातावरण में सांस लेना प्रारंभ किया। साहित्यिक रूप में भी भारतीय दर्शन एवं शैली के साथ-साथ फारसी तथा अरबी रिवायतों और शैली से अपने दामन को समृद्ध किया। निज़ामी बीदरी से लेकर बुरहानुद्दीन जानम एवं इब्राहीम आदिल शाही जगत गुरु की हिन्दवी परंपरा तेजी से जारी रही। इसके बाद फारसी और अरबी का प्रभाव पड़ने लगें। फखरुद्दीन निज़ामी बीदरी की 'मसनवी' कदमराव पदमराव लिखी गई जिसका रचना काल डा. जमील जालंबी ने 834 हि./1430 ई. और 839 हि./1435 ई, के बीच का माना है। यह काल सुलतान शहाबुद्दीन अहमद शाह वली बहमनी का काल था (895 हि./1422 से 839 हि./1436 ई.)। यह दक्खिनी उर्दू की पहली मसनवी है। इसका स्वरूप फारसी मसनवी के समान है और इसका छंद भी फाऊलन, फाऊलन, फाऊलन, फाऊल है। भावनाओं के लिहाज से इसकी शब्द संपदा पर हिन्दवी का प्रभाव पूर्ण रूप से दिखाई देता है। भारतीय मिथकीय विश्वास और आस्था की गहरी छाप इसमें दिखाई देती है। हीरा नगर के राजा कदमराव ने जोग की दीक्षा लेने के बाद अघोरनाथ से धनुर्विद्या सीखने की इच्छा प्रकट की। अघोर नाथ ने धनुर्वेद तथा अथर्वेद के करिश्मे दिखा कर राजा को अपना शिष्य बना लिया। एक आत्मा को दूसरे शरीर में प्रवेश कराने के किस्से इसी मसनवी से शुरु होते हैं। मसनवी कदमराव पदमराव की कथा कुछ परिवर्तन के साथ तत्कालीन भारतीय विश्वास, चिंतन और जादू के बहुत ही समीप है। इस काल की जनता इन बातों में इतना ही विश्वास रखती थी जितना आज हम वैज्ञानिक आविष्कारों पर विश्वास रखते हैं। इस मसनवी में जिस भाषा का प्रयोग हुआ है उसकी शब्दावली हिन्दवी है। प्राचीन काल की मसनवी होने पर भी इसमें आधुनिक हिन्दी व्यवहार एवं तुलना पद्धति मिलती है। उदाहरण के रूप में निम्न लिखित पंक्तियाँ ध्यान देने योग्य हैं।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रो. अशरफ रफ़ी

1. "जो कुछ काल करना सो तूं आज कर
   न घाल आज का काम तूं काल पर"
2. "सभी खेल उसके, करन हार वह
   करन हार जोगी, न करतार वह"

अहमद गुजराती की मसनवी 'युसुफ जुलेखा' कुतुबशाही काल की पहली मसनवी है। प्रो. सय्यदा जाफ़र ने इसका रचना काल 988 हि./1580 ई. से 993 हि./1585 ई. के बीच निर्धारित किया है। अहमद गुजराती की प्रेमाख्यानक मसनवी में भारतीय संस्कृति, रीति–रिवाज एवं चिन्तन के दर्शन होते हैं। इसका कथानक कुरान की पुरानी कथाओं से लिया गया है फिर भी इस पर भारतीय तत्वों का प्रभाव परिलक्षित होता है। इस प्रेमाख्यान में अहमद गुजराती ने प्रेमी के लिए साईं, मीत, पिया, मनमहाना जैसे शब्दों का प्रयोग किया है। कवि के शब्द हैं–

"कहीं यूसूफ कूं भी मन महाना, तेरा वारी मेरे तन मन पराना।"

"जिसे साईं सजन की प्यास लागें
सपत समदुर थे प्यास इसकी न मागें।"

मोहम्मद कुली कुतुबशाह, वजही नुसरती गव्वासी, मुक़ीमी, अमीन और सनती की मसनवियों में भी प्रेमी के लिए ऐसे ही हिन्दी शब्दों का प्रयोग किया गया है। वजही की मसनवी 'कुतुब मशतरी' वह पहली मौलिक मसनवी है जिसमें कवि की कल्पना–शक्ति द्रष्टव्य है। वजही ने जिन भारतीय तत्वों को अपनी मसनवी में स्थान दिया है उससे स्पष्ट होता है कि इन विशेषताओं को दक्खिनी के कवियों ने भी स्वीकार किया है। इस वातावरण को दक्खिनी कवियों ने पूरी तौर पर स्वीकार ही नहीं किया बल्कि इसी वातावरण में उन्होंने अपनी आँखें खोलीं और यही उनकी मानसिकता भी बनी। उसी के अनुसार वे सोचते और लिखते रहे। राजकुमार के सम्मुख संसार भर की सुंदरियों को प्रस्तुत करना होता तो कवियों में ईरान. तूरान (तेहरान) और

8)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

चीन की सुंदरियों के साथ कर्नाटक और गुजरात की सुंदर बालाओं को भी प्रस्तुत किया। परंतु राजकुमार पर तो बंगाल के जादू का प्रभाव था अतः वजही ने संसार की सुंदर बालाओं की अपेक्षा बंगाल की सुंदर बालाओं को अधिक महत्व दिया। वजही अरबी और फारसी के अच्छे विद्वान थे। इसके अतिरिक्त उनकी हिन्दू दर्शन में भी गहरी पैठ थी। प्राचीन हिन्दू देवी-देवताओं से प्रभावित वे पृथ्वी को शेषनाग के सिर पर स्वीकार करते हुए करते हैं–

"तो यूँ अदल अब जग में होने लग्या
ज़मी का भुनक भार ढोने लग्या।"

हिन्दु लोक-कथाओं में यह प्रसिद्ध है कि पृथ्वी के नीचे जल है जिसमें एक मछली है। इस मछली पर एक गाय खड़ी है और इस गाय ने अपने सींग पर पृथ्वी का बोझ उठा रखा है।

"जो तुज हुकमते ताव माही अछे
सुलेमान की बादशाही अछे।"

वेदों में इंद्र, अग्नि और यम जैसे देवताओं का ज़िक्र मिलता है। उनकी स्तुति में श्लोक लिखे गए हैं। दक्खिनी कवियों ने इन देवताओं को भी अपनी काव्य रचनाओं में स्थान दिया है। देवताओं में सर्वश्रेष्ठ देवता इंद्र हैं जिनका रूप-रंग स्वर्ग जैसा है और ये समस्त देवताओं के राजा माने जाते हैं।

सुलतान इब्राहीम आदिल शाह सानी (1027 ई.– 1627 ई.) के एक अद्‌भुत दरबारी कवि ने इब्राहीमनामा (1012 हि./ 1603 ई.) में सुलतान की स्तुति करते हुए लिखा है –

"इंदर एक पातुर रहनुमा नामवार
वैश्या लाखों नाचे सो शह के द्वार।"

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अब्दुल के समान गवासी ने भी राजा इंद्र को आदर्श मानकर अब्दुल्लाह कुतुबशाह की स्तुति में अपने उद्‌गार व्यक्त किए हैं।

"शहानी भोग तुझ भोगी को अर्जानी अछौ जमजम
कि लेने भोग दुनियाँ का तूँ देवेंदुर हो आया है।"

'तूती नामें' में गव्वासी ने इंद्र देव के वैभव और महानता का उल्लेख करते हुए अब्दुल्लाह कुतुबशाह की महानता का वर्णन किया है—

"जमीन का मगर तू है देवेंदर आज
पूनम का यही है मगर चंदर आज।"

कामदेव प्रेम का देवता है। हिन्दू दर्शन के अनुसार उनका शरीर नहीं होता है। इनके रूप को अभिव्यक्त करना हो तो इन्हें नवयुवक बालकों के रूप में प्रस्तुत किया जाता है। इब्राहीम आदिलशाह ने उनकी रूप-रंग विहीनता का इस प्रकार चित्रण किया है–

"मदन रूप का लोग करते बखान
वले व–सो बिन रंग ना कुछ निशान"

दक्खिनी मसनवियों में रामायण और महाभारत के अनेक पात्र सरलता से मिल जाते हैं। भारतीय काव्य में योग धारण और संन्यास लेने की भी एक विशेष परंपरा है। कदमराव से लेकर सहरुलबयान तक यह परंपरा हमारी प्रायः सभी मसनवियों में व्याप्त है।

शाही की 'नवरस' (1597 ई.) भारतीय राग-रागनियों का कोष ही नहीं अपितु धर्म एवं संगीत की महफ़िल का आवश्यक अंग भी है। धर्म के अतिरिक्त सामाजिक जीवन में भी इसका चलन है। ऋतुओं के परिवर्तनों के समय भी इनका प्रयोग होता है। दक्खिनी के कवियों ने न केवल पारिभाषिक

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

शब्दावली और अर्थालंकारों का प्रयोग किया है, बल्कि भारतीय रागों के अनुरूप काव्य रचना भी की है। अब्दुल गव्वासी और स्वयं मुहम्मद कुली कुतुबशाह ने भारतीय नृत्य एवं संगीत के प्रति अपनी अभिरुचि भी प्रकट की है। शाही ने अपने मर्सियों (शोक गीत) के साथ राग-रागनियों के नाम भी दिए हैं। सांस्कृतिक रूपों, सामाजिक चिंतन और भावनापूर्ण तत्वों के दर्शन इन मसनवियों में स्वतंत्र एवं व्यापक रूप से होते हैं। ग़ज़ल मार्मिक भावनाओं को उद्घाटित करने के साथ-साथ सामाजिक जीवन को प्रतिबिंबित करने का सफल माध्यम है। दक्खिनी ग़ज़ल लिखने वाले मुहम्मद कुली कुतुबशाह, वजही, शाही, गव्वासी नुसरती और शौक़ी ने अपनी रचनाओं में काल के सांस्कृतिक और सामाजिक पक्षों को भारतीय तत्वों के रंग में रंग कर प्रस्तुत किया है। दक्खिनी काव्य सामान्यत: आडंबर रहित है। उन्होंने अपनी भावनाओं को मुक्त भाव से अभिव्यक्त किया है। हिन्दी काव्य के समान दक्खिनी ग़ज़ल में नारी प्रेम की अभिव्यक्ति में यह विशेषता 'मीर' में काल से हजरत तक नहीं मिलती है। बिलकुल यही स्थिति प्रेमी को संबोधित करते समय होती है। उर्दू काव्य में प्रेमी की कल्पना स्पष्ट नहीं है, परंतु दक्खिनी उर्दू में प्रेमी के लिए स्त्रीलिंग का प्रयोग हुआ है या प्रेमी के संवंध में ऐसा चरित्र-चित्रण प्रस्तुत किया है, जिससे प्रेमी प्रत्यक्ष रूप से सामने आ जाता है–

"छबीली सूँ लग्या है मन हमारा
कि इस बिन नैं हमें एक तिल करारा
सब निस खड़ी जलूंगी जागा सूँ ना हिलूंगी
नाजल को क्या कर करुंगी अव्वल सूँ मदमती हूँ"

ग़ज़ल का यह स्वरूप फारसी साहित्य से उर्दू साहित्य में आया है। इसलिए दक्खिनी गजल पर ईरानी प्रभाव पड़ने की पूरी संभावना थी, परंतु ऐसा नहीं हुआ। दक्खिनी ग़ज़ल में मौलिकता है। दक्खिनी के ग़ज़लकारों ने भारतीय वातावरण में विचरते पशु-पक्षियों का वर्णन ही नहीं किया अपितु भारतीय संस्कृति का रंग इनके चित्रण में भी दिखाई देता है। होली की रंगा-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

रंगी, दीवाली के दीप, बसंती फूलों की वहार, मृगशिरा नक्षत्र की गरज इस वात की द्योतक है कि दक्खिनी की ग़ज़ल भारतीय समाज की भावात्मकता और आध्यात्मिकता से ओत-प्रोत है । सुलतान अब्दुल्लाह कुतुबशाह की पंक्तियाँ दृष्टव्य हैं–

"मिरग ग़रजिया सहेलियां हो अलापो
कि खुश मोतियाँ के हाराँ हो बरसते मेहा के मारा

रामायण और महाभारत के पात्र न केवल मसनवियों में मिलते हैं अपितु ये ग़ज़ल में भी मिलते हैं जिससे अर्थ में गहनता व गांभीर्य आ गया है । लुतफ़ी कहते हैं–

लुतफ़ी तेरे पलन की पाक़ी कहाँ है इसमें,
ज्यों पाँच पांडवों के कहते सो धुरपति हूँ"

इस काल का साहित्य भारतीय तत्वों से परिपूर्ण है । देवी-देवताओं के प्रति आस्था, चिंतन और मनन आदि के रूप समुपलब्ध होते हैं। इसके अतिरिक्त सांस्कृतिक धाराओं के साथ भारतीय उपमाओं एवं उपमानों का भी रूप मिलता है । इसमें लैला-मजनूं, शीरीं-फरहाद, वामेक़ व अजरा के प्रेमाख्यानों के स्थान पर नल-दमयन्ती, चंद्रवदन व महियार की विरह की आहें सुनाई देती हैं। दक्खिनी कवियों ने उपमेय व उपमान दोनों ही हिन्दुस्तानी वातावरण से प्राप्त किए हैं–

गंगा उबलियाँ है मेरे नयन के अंझुआ के बुंदाँ थे
मिंजे डर क्या तरावन हार दरिया का है तूं वारिस ।"

सुलतान अब्दुल्लाह कुतुबशाह ने प्रेमिका को पलक की तुलना राम के बाण से और उसकी भौंह की तुलना कटार से की है–

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"हरेक तेरा पलक है राम का बान
हरेक सूका है तेरा ज्यूं कटार।"

अहमद गुजराती ने 'यूसुफ़ ज़ुलेखा' में वृक्ष की डालियों की तुलना जनेऊ (जुन्नार) से की है—

"दिसें वह झाड़ मिल कर डाल में डाल
रहे जुन्नार ज्यूं मिले बाँह गल डाल"

जुलेखा के काले बालों के सफेद होने पर शायर ने सुंदर उपमा देकर वर्णन किया है— "कि कज़ा के तीर से कव्वा खत्म हो गया और उसकी जगह पर बगुला आ बैठा।"

"कज़ा के तीर थे उड़कर गए कग़
सो उनके थाँव आकर पाकड़े बग।"

दक्खिनी उर्दू की एक ऐसी बोली है जो काल, और स्थान दोनों को एक साथ लेकर चलती है। दक्खिनी भारतीयता में यहाँ तक घुलमिल गई है कि हिन्दी भाषी इसे हिन्दवी कहने पर जोर देते हैं। वे इसे हिन्दवी इस लिए कहते हैं कि दक्खिनी उर्दू की नींव खड़ीबोली है। खड़ीबोली उर्दू ने दक्कन की धरती पर कदम रखा तो वह स्थानीय भाषाओं से प्रभावित हुई और उत्तरी भारत के मुहावरों के बजाय वहाँ की बोलियों को अपना लिया। दक्खिनी उर्दू भी उर्दू की केवल भौगोलिक बोली ही नहीं हैं बल्कि इसकी अपनी विशेषता भी है और सामाजिकता भी। यह अपने क्षेत्र के रीति-रिवाज, जीवन पद्धति, चिंतन और अंदाज़े नज़र का भी प्रतिनिधित्व करती है।

दक्खिनी भाषा और साहित्य के भाषायी स्वरूप का अध्ययन करने पर पता चलता हैं कि इसमें अरबी, फ़ारसी और हिन्दी को अलग-अलग

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ध्वनियाँ भी सम्मिलित हैं और इसमें ऐसी ध्वनियाँ भी हैं जो इन दोनों-तीनों भाषाओं में समान रूप से उपलब्ध हैं।

दक्खिनी की मूर्धन्य और महाप्राण ध्वनियाँ— ट, ठ, ड, ढ और फ, भ, थ, ध आदि का संबंध हिन्दी भाषा की ध्वनियों से है। इन्हीं ध्वनियों के संयोजन एवं समन्वय से जो छंद विधान और लय विधान होता है वह कविता की ध्वन्यात्मक संरचना (Phonological patterns) का निर्माण करता है। यह परंपरा हिन्दी की काव्य परंपरा में मिलती है। यही कारण है कि दक्खिनी साहित्य की-ध्वनि संरचना के अंतर्गत हिन्दू विश्वास व भारतीय दर्शन आसानी से समा जाता है।

दक्खिनी काव्य में भारतीय समाज की समन्वयपूर्ण प्रवृत्ति समाविष्ट हो गई है। मोहम्मद कुली कुतुब शाह के कलाम से इस तथ्य की पुष्टि होती है। वे लिखते हैं—

"हिन्दु रीति कूं तुम देतो रिवाजां,
कि बुत खाना नमने हो तुम भी हमन सर"

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दक्खिनी गद्य का विकास

डॉ॰ बालकिशन शर्मा 'रोहिताश्व'

दक्खिनी प्रांत और दक्खिनी भाषा साहित्य की एक विशिष्ट सांस्कृतिक, ऐतिहासिक और राजनैतिक गरिमा है। 'दक्खिनी' उत्तर तथा दक्षिण, आर्य और द्रविड़ संस्कृतियों का मिलन क्षेत्र रहा है। इस सम्मिलन और सम्मिश्रण के कारण दक्खिनी ने एक ऐसी संस्कृति के विकास में आरंभ से योगदान दिया है, जिसमें दोनों की विशेषताएँ विद्यमान रही हैं। उत्तर-पूर्वी भारत की निर्गुण साधना और दक्षिण-पश्चिम प्रदेश की सूफी साधना ने यहाँ दर्शन, भाषा, साहित्य, संस्कृति में चिंतन और रागात्मक बोध के अभिनव धरातल का निर्माण किया है।

दक्खिनी साहित्य दक्षिण के गुलवर्गा, बीजापुर, मैसूर, गोलकुंडा, कोंकण प्रदेश तथा औरंगाबाद के क्षेत्र में विभिन्न सूफी-साधकों, निर्गुण-संतों, मराठी-कोंकणी कवियों, कन्नड़ प्रदेश के सामंतों तथा मुस्लिम शासकों व साहित्यानुरागियों के समवेत प्रयास से पनपा है। ऐतिहासिक अध्ययन के आधार पर कहा जा सकता है कि चालुक्य, राष्ट्रकूट, यादव, बहमनी, आदिलशाही, कुतुबशाही और आसफजाही वंशों के शासन ने दक्खिनी के विकास और प्रचार-प्रसार में निरंतर सकारात्मक भूमिका निभाई है।

दक्खिनी साहित्य के संदर्भ में डॉ॰ सुनीतिकुमार चटर्जी, राहुल सांकृत्यायन, हजारीप्रसाद द्विवेदी, बाबूराम सक्सेना आदि प्रभृति विद्वानों ने गवेषणात्मक टिप्पणियाँ प्रस्तुत की हैं। दक्खिनी भाषा संस्कृति की लोक चेतना पर वासुदेवशरण अग्रवाल और रामविलास शर्मा ने नए संकल्प के साथ कार्य

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

करने का प्रस्ताव रखा है. . ." जिस प्रकार अपभ्रंश साहित्य के प्रकाश में आने से हिन्दी की ऐतिहासिक परंपरा कई शताब्दी पीछे हट गई थी, उसी प्रकार दक्खिनी के गद्य-पद्य की यह सामग्री देश और काल में हिन्दी की गंभीरता का विस्तार करती है। 1 चौदहवीं शती के वंदानवाज का गद्य, गोंदा की कविता, अमानुल्ला में दोहे, चौपाई और वजही की कविता तथा मसनवी किस्सा मैना सतवंती तथा उत्तर भारत में प्रसिद्ध लोरा-चन्दा व अन्यान्य सूफी रचनाओं का वासुदेवशरण अग्रवाल ने विस्तृत आयामों में तुलनात्मक अध्ययन करने का प्रस्ताव रखा था।

"दी ओरिजन एंड डेवलेपमेंट ऑफ बंगाली लैंगवेज" की भूमिका में डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने दक्खिनी के प्रचार-प्रसार का श्रेय मुसलमान शासकों के सतत अभियानों, सूफी साधकों के प्रयासों और दक्षिण प्रदेश के सामंतों को दिया है।[2] वैसे आनेकानेक विद्वानों ने दक्षिण में दक्खिनी हिन्दी के प्रचार-प्रसार का श्रेय तुगलक द्वारा देवगिरि को राजधानी बनाने के प्रयास और हसनगंगू बहमनी (747 हिजरी) द्वारा स्वाधीन शासन की स्थापना को दिया है। लेकिन यह वस्तुपरक सत्य है कि 'ईरानी प्रभाव' से मुक्त होने के बाद दक्खिनी रियासतों को दिल्ली से संबंध बनाए रखने के लिए दक्खिनी हिन्दी (जो नस्तालिक लिपि में लिखी जाती थी) का ही सहारा लेना पड़ा होगा और यही इस भाषा के उत्तर की ओर बढ़ने तथा दक्खिनी में फूलने-फलने का सशक्त कारण बना।

प्रस्तुत संदर्भ में उर्दू के प्रसिद्ध आलोचक सय्यद मुहिउद्दीन कादरी जोर और नसीरुद्दीन हाशमी का अभिमत दृष्टव्य है कि "जहाँ शुमाली हिन्दुस्तान (उत्तर भारत) में फारसी में नग्मे (गीत) गूंज रहे थे, दक्कन में अदीब (साहित्यकार) और शोरा (कवि) दक्खिनी अदब और शायरी को तरक्की देने में मशरूफ (संलग्न) थे। इन्हीं अव्वलीन (आरंभिक) बुर्जुगों में एक हजरत ख्वाजा बंदेनबाज है, जिस तहरीक का आगाज (आरंभ) ऐसी

9)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

मुबारक हस्ती के हाथों फरोग (मूर्तरूप) देने में आपकी रूहानी कुव्वत (आत्मिक शक्ति) बराबर काम कर रही थी।[4] परवर्ती दौर में हजरत शाह मीराँजी शम्शुल उश्शाक, हजरत शाह बुरहानुद्दीन जानम, हजरत शाह अमीनुद्दीन आला और हजरत मुहम्मद सहरूद्दीन ने इस सिलसिले को न सिर्फ कायम रखा, बल्कि उसको फरोग देने में कुछ कमी न रखी और यह सबील (गद्य की परंपरा) जो गुलवर्गे से चली थी।[5] बीजापुर होते हुए जुनूबी (दक्खिनी) हिन्द और मैसूर तक पहुँच गई थी और इसका प्रभाव गुजरात की गूजरी भाषा और गोवा की कोंकणी भाषा में आज भी देखा जा सकता है।

दक्खिनी गद्य के विकास में सूफी साधकों के कादरी संप्रदाय, चिश्ती संप्रदाय, सुहरावर्दी संप्रदाय, मराठी के वारकरी संप्रदाय, महानुभाव संप्रदाय, मध्ययुगीन निर्गुणपंथी विचारधारा के समन्वित प्रभाव को नकारा नहीं जा सकता है। इसके साहित्य में हरियाणवी, राजस्थानी, ब्रज-अवधी, मराठी, तेलुगु, गुजराती, कन्नड़ एवं कोकंणी–भाषाओं के शब्द पर्याप्त मात्रा में पाए जाते हैं।

दक्खिनी साहित्य को अपभ्रंश साहित्य के समानधर्मा साहित्य की संज्ञा देने का अनथक प्रयत्न राहुल सांकृत्यायन और श्रीराम शर्मा ने किया है। श्रीराम शर्मा ने दक्खिनी के प्रारंभिक रचनाकार कण्हप्पा (806-49) और पुष्पदंत (959-72)को अभिज्ञापित किया है। दक्खिनी साहित्य के सुपुष्ट प्रमाण हमें नामदेव (1240 के लगभग) गोंदा (1300-1551) शाह मीरांजी शंशुल शाख (1497 के लगभग), ख्वाजा बंदे नवाज गेसूदराज (1388-1423) शाह बुरहानुद्दीन (1568.) मौला अब्दुल्ला (1623) आदि के साहित्य में पुष्ट रूप से उपलब्ध होते हैं।

दक्खिनी का उद्भव और विकास हमें तेरहवीं शंताब्दी से प्रमाणित रूप से उपलब्ध होता है। गोलकुंडा और बीजापुर के शासकों ने तत्कालीन

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

रचनाकारों कों भरपूर संरक्षण दिया है। सोलहवीं और संत्रहवीं शताब्दी के शाह बुरहानुद्दीन जानम (1544), गवासी और मुल्ला वजही आदि ने इसे क्लासिक स्तर की ऊँचाइयों तक निर्भित किया है। "सैफुल मुलूक व बदी उल जमाल" (गवासी 1650) और "कुतुब मुशतरी" एवं 'सबरस' (1693) हमारे कथन की प्रामाणिक कृतियाँ हैं। ऐतिहासिक तथ्यों के आधार पर गोलकुंडा और बीजापुर के पतन का काल 1689 के लगभग है। जिस प्रकार दिल्ली का पतन दिल्ली के शायरों, अदीबों के बिखराव का कारण बना था उसी प्रकार गोलकुंडा और बीजापुर का पतन हो जाने के कारण दक्खिनी हिन्दी-उर्दू के कवियों और लेखकों ने अपनी साधना स्थली को त्याग कर उत्तर और दक्षिण दिशाओं में आश्रय तलाशना चाहा। परिणामस्वरूप 18 वीं सदी के उत्तर काल से अर्थात (1786 ई.) से औरंगाबाद, वेलूर, मद्रास, कडप्पा, सिद्धोर और मैसूर-गुलबर्गा से साहित्यिक इतिहास के पल्लवन के प्रमाण उपलब्ध होने लगे।

हैदरअली और टीपू सुल्तान के काल में भी दक्खिनी को प्रोत्साहन और संरक्षण प्राप्त होता रहा हैं। अपने राज्य की समृद्धि के साथ-साथ उन्होंने दक्खिनी साहित्य और कला की समृद्धि पर पूरा-पूरा ध्यान दिया। यह अलग बात है कि अब्दुल कादर सरवरी ने उक्त सुलतानों को उर्दू का संरक्षक और प्रोत्साहक सिद्ध करने का भी प्रयास किया है।[6] परंतु उनका प्रयास समीचीन नहीं है क्यों कि यदि ये मात्र उर्दू के ही समर्थक होते तो "मीरातुल इसरार" जैसी कृति दक्खिनी में प्रस्तुत न होती। इस के अतिरिक्त टीपू सुल्तान का शृंगेरी मठ के शंकराचार्य को हिन्दी में लिखा गया पत्र भी इस बात का साक्षी है कि सुलतान को जन भाषा दक्खिनी हिन्दी का वह रूप ही प्रिय था जो सामान्य जनता समझ सकती थी, फारसी-अरबी से बोझिल वह उर्दू रूप नहीं जो 'उर्दू ए मुअल्ला' था।

पूर्व काल का मध्ययुगीन साहित्यिक, सांस्कृतिक और दक्खिनी प्रदेश अब राजनैतिक दृष्टि से कई प्रांतों में विभक्त हो चुका है। बरार मध्यप्रदेश में,

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

मराठी भाषी प्रदेश औरंगाबाद, और बीड महाराष्ट्र में; गुलबर्गा, बीजापुर, मैसूर आदि कन्नड़ भाषी प्रदेश कर्नाटक में; कोंकण भाषी प्रदेश गोवा में तथा तेलुगु भाषी प्रदेश आंध्र में और उसका कुछ हिस्सा मद्रास-तमिलनाडु में चला गया है। पाश्चात्य संस्कृति के अंधानुकरण और भाषावार प्रांतों की रचना से विगत सात-आठ शताब्दियों से चली आ रही गंगा-कावेरी और कृष्णा नदियों के सम्मिश्रण वाली संस्कृति रूपा दक्खिनी भाषा अब केवल बेलगाँव, गुलबर्गा, बीजापुर, औरंगाबाद, मैसूर और हैदराबाद में बोलचाल और मज़ाकिया शायरी के प्रयोग तक ही सीमित है।

हरियाणवी, राजस्थानी, अवधी और ब्रजभाषा के प्राचीन स्वरूप ने यात्रियों, सैनिकों, सूफी-साधकों, निर्गुण संतों और व्यापारी लोगों के माध्यम से दक्खिनी को अत्यधिक प्रभावित किया है। मराठी के विशिष्ट संतों की लोकभाषा और तेलुगु व कन्नड़ भाषा की लयात्मकता और नाद-सौंदर्य ने भी इसमें कम योगदान नहीं दिया है। बीजापुर के एक आदिलशाही शासक ने ब्रजभाषा में तो 'नवरस नामा' भी लिखा है।

दक्खिनी के मूल निवासियों पर फारसी की अपेक्षा ब्रज-अवधी का प्रभाव पाया जाता है। वजही का 'सबरस' इस बारे में सटीक उदाहरण बन सकता है। दक्खिनी के दो रूप हमेशा प्रचलित रहे हैं– एक बोलचाल का रूप और दूसरा साहित्यिक रूप। साहित्यिक दृष्टि से बीजापुर और गोलकुंडा की शैली अधिक प्रयुक्त हुई है तो बोलचाल में औरंगाबाद और देवगिरि की भाषा, जिसमें मराठी का पुट अधिक रहा है। कालांतर में दक्खिनी के मूल निवासियों ने अपनी प्रादेशिक बोलियों तेलुगु, मराठी, कन्नड़ और कोंकणी के साथ-साथ दक्खिनी के बोलचाल और साहित्यिक दोनों रूपों को अपनाया है।

दक्खिनी भाषा की मिठास और रवानगी के स्वरूप को लक्ष्य कर कई आलोचक उसे "कदीम-उर्दू" मानने में संकोच नहीं करते। दक्खिनी की बोली

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

और दकनी नामों का प्रयोग वजही और इब्ने निशाती जैसे रचनाकारों ने भी किया है। यथा–

"दक्कन में जो दकनी मिठी बात का
अदा नहीं किया कोई उस घात का।

(वजही– कुतुब मुशतरी)

× × ×

बिसाती जो हिकामत फारसी है
मुहब्बत देखने को फारसी है।
वहाँ मुश्किल इबारत किसकूं सजता
इबारत सब किसे वो नईं समजता।
तुझे है फारसी में दस्त गह आज
उसे हरकस के तईं समझा को तू बोल
दखन की बात सूं रियाँ कू खोल।
के उसमें सरबसर मिल यार सूं यार
करें सो है पिरत का गर्म बाजार।

(इब्ने निशाती– फूलाबन)

सुधी पाठकों तथा आलोचकों को ज्ञात ही है कि मुल्ला वजही ने सन् 1635 में 'सबरस' की रचना की है जो दक्खिनी भाषा बोली में दर्शन एवं रागात्मक बोध की अनुपम कृति है। उस दौर में दिल्ली में उर्दू का प्रचलन ही नहीं था। दिल्ली में उर्दू का प्रवेश 1647 ई. में उर्दू-ए-मुअल्ला (बाजार या छावनी की उर्दू) का इलाका बसने के बाद होता है और यह ज़बान दिल्ली की साधारण जनता की भाषा न होकर केवल दिल्ली के कुछ परिवारों तक ही सीमित रही है।

उर्दू या दक्खिनी ने सामान्य जनता को इस्लामी धर्मशास्त्र से परिचित कराया है। यह अंतिम सत्य नहीं है। कारण उर्दू या दक्खिनी में ऐसी

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

असंख्य कृतियाँ हैं जो किसी एक समुदाय से संबंधित नहीं हैं। कृतियाँ सार्वदेशिक और शाश्वत हैं। शाश्वत और सार्वदेशिक मानवीय उदात्तता, रागात्मकता के अभाव में किसी भी भाषा का साहित्य गौरवान्वित नहीं हो सकती है। पर यह भी सच है कि दक्खिनी गद्य.साहित्य का अधिकतर अंश इस्लाम धर्म से संबंधित रहा है जिसमें कई अख्यानक शुक सप्तपदि, जैन-कथाओं, लोक-कथाओं 'मैनासतवन्ती' 'चंदन बदन और महियार' के परिवर्तित रूप 'लोरिकायन' से संबंधित हैं। कई विद्वानों ने इस संदर्भ में तूतीनामा, चन्दायन और चन्दर वदन व महियार की लोक कथाओं को उद्धृत किया है।

दक्खिनी ने कई ऐतिहासिक कारणों से फारसी कथाओं और ईरानी सभ्यता के प्रभाव को भारतीय संस्कृति के अनुगमन के साथ स्वीकारा है जिसकी ताईद सैयदा जाफर, जीनत साजिदा, श्रीराम शर्मा और कुरूतुंल ऐन हैदर आदि ने की है। वास्तव में दक्खिनी भारतीय भाषा है और इसका अधिकाँश भाग मूल रूप में भारतीय ही है। प्राचीन दक्खिनी के गद्य रूप में अब आपके सामने 'एकनाथ' (1528-1599 ई.) की रचनाओं की बानगी प्रस्तुत करने की अनुमति चाहता हूँ। एकनाथ मराठी के साथ-साथ दक्खिनी के भी श्रेष्ठ रचनाकर माने जाते हैं।[7] एकनाथ ने वाजीगर और मदारियों की भाषा-शिल्प का प्रयोग अपनी आध्यात्मिक अभिव्यक्ति के लिए किया था। वैसे बाजीगर और मदारी पूरे देश में भ्रमण करते हैं। वे विशेष ढंग से पदों और शब्दों का उच्चारण करते हैं। इनके माध्यम से एकनाथ ने सूफी साधकों की परंपरा में, निर्गुण विचारधारा के समन्वित प्रभाव से अर्ज, अर्जदास्त, महार (अन्तयज) के बहाने तत्कालीन पटेल, पटवारी, सेठ, देशमुख आदि की ठगी और गाँवों की दुर्व्यवस्था का वर्णन किया है और आध्यात्मिक ज्ञान की अवधारणा रखी है। यहाँ सपेरे से संबंधित एक तुकान्त गद्य है। सपेरे की बोलचाल, उसके लटके, नाज-नखरे, दीनता-विवशता सभी कुछ इसमें समाविष्ट हैं। साँप छोड़ने से पहले सपेरा ईश्वर का ध्यान करता है– ''अव्वल

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

याद करो उस्ताद की/गुरु, पीर, पैगंवर की/और याद करो करतार की। जिन्ने मंडाम पैदा किया है। (मंडाम का शाब्दिक अर्थ संसार है)।

सपेरे के माध्यम की आध्यात्मिक कहानी इस प्रकार आरंभ होती है। "अव्वल देखे येक था। उसे नाम न था। नाम दरम्याने पैदा हुआ, चल चल चल। अव्वल तो एक, एक सौ दोन। दो सौ तीन। तीन सौ चार। चार सौ पाँच। पाँच सौ पचीस। पचीस सौ छतीस वनाया है। छतीस का वी (वी: भी) एक रइया है। सौ (गुरू: गुर) गारूड़ी कूं याद है। और देखो कैसा खेल बनाया है। चल, चल, चल, चल। क्रोध का विचु (विचु: बिच्छू) बाहेर काढा। उसका वीख शिर कू चढा। जपी, तपी, सन्यासी की खोड़ तोड़ा। समाज के देखो भाई विच्चू ने नाँगी (नाँगी : डंक) मारा रे मारा। × × "

"भागो रे भागो, दवड़ो ते दवड़ो। गुरु के चरण पर दवड़ो। तो ऐसा करूँ कि गुरु के पाँव कवी न छोड़ो। वहाँ कोई का न चले। ममता नागन का जहर बुरा है। वो कैसी चलती है? सो वड़े-वड़े से लढते (लड़ते) हैं। ना लढ़े ऐसी हिम्मत वताऊँ तुम कूं। सुनो रे भाई सुनो। गुरु-पीर के हाथ का मोहरा तुम्हारे हाथ चढ़े दुनेदार तो नागन का तुटे थारा। सो कवी आवने नहीं पावें। मना मनशा साप करो। शांति पेटारे में कसकू डारो भाई, डारो भाई, डारो। बाहेर तो विवेक शिक्का मारों। ... एका हाँडी वाग दिया खेल। लो हो गया आलक्ष्य खेल"।[8]

एकनाथ के उपर्युक्त गद्य-काव्य में अनेक रूपक उपलब्ध होते हैं। क्रोध, विषय वासना और ममता इन सबको एकनाथ परम शत्रु मानते हैं। ये शत्रु अजेय हैं। केवल गुरु ही इन शत्रुओं को पराजित कर सकता है। नाथों ने साधना पद्धति में गुरु को अत्यधिक महत्व दिया था। गुरु का यह स्वरूप एकनाथ ने नाथ संप्रदाय से प्राप्त किया, गुरु ही गारूड़ी है। वैसे गारूड़ी का शब्दार्थ मदारी या सपेरा है। आध्यात्मिक और दक्खिनी भाषा की दृष्टि से इसका अनुपम महत्व है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"हाँडी बाग बड़ा अलवेला। (हाँडीबाग-गरूड़ी, जादूगर) हात हलावे, पाँव हलावे, भले-भलोवे लोग भुल। हाँडी बाग। बाप वड़ा क्या बेटा बड़ा? बेटे आगे बाप खड़ा। गुरु बड़ा क्या चेला बड़ा? चेले आगे गुरू खड़ा। चेला तो प्रेम महल पर चढ़ा। धनी बड़ा क्या चाकर बड़ा? चाकर आगे धनी खड़ा। सास वड़ी क्या बहू बड़ी? बाँदी आगे वीवी खड़ी। निराधार की लेकर छड़ी। बीबी खसम के छाती पर खड़ी। तैं बड़ा क्या मैं वड़ा? ... मेरे गुरु। ग्यानी कूं गुन लगाऊँ, लोभ आँधे कू उड़ावूं। फक मारू तो जा जा जा। बोध के पहाड़ पर जा। बच्चा जाहाँ आना नहीं ताहाँ ज्या। मेंरे सदगुरु दाता कू शरन ज्या। मेरे सदगुरु दाता की इतनी ही लकरी। मूल मंतर हात मो पकरी। जिवर दौरा-उदर दौरी। फेर देखे तो मेरी सात। देख अबी करूँगा खबूतर का तमाशा। बिन पर से उड़ता है कैंसा। ... धीरे धीरे तेरा वी मन्तर बोलूं। लिंग-देह की गांठ खोलूं। एक वार ऐसा खेल खेलूं कि मेरे बड़े बड़े खेल थे। हा तो एक, एक के दो, दो के तीन, तीन के चार, चार के पाँच पाँच के पच्चीस, पच्चीस के छतीस, छतीस का एक। एक बी नहीं। तो जनार्दन देखा।[9] सारांशत: महाराष्ट्र में लिखी गई दक्खिनी की रचनाओं पर निर्गुणवाद छाया हुआ है।

दक्खिनी के रचनाकारों के सामने ईरान और भारतीय भाषा तथा संस्कृति की विशाल परंपरा थी। यह परंपरा अपनी विविधता में प्रेम और वैराग्य, आध्यात्मिकता और वासना, विलाप और मिलन, उपदेश और कर्मठता की रोचक कथाएँ अपनाए हुए थी। कुछ आख्यानक काव्यों में प्रेम के बहाने उपदेश और कुछ में उपदेश के बहाने प्रेम की कहानी कही है। कुछ आख्यानक काव्य आश्रयदाता अथवा समकालीन किसी वीर प्रेमी तथा दानवीर की कथा पर आधारित है।

राहुल सांकृत्यायन ने दक्खिनी साहित्य को हिन्दी साहित्य की ही निधि अभिज्ञापित किया हे। वैसे "दक्खिनी के प्रथम ग्रंथकार ख्वाजा बंदा नवाज (1318-1432 ई.) माने जाते हैं। इनका ग्रंथ 'मिराजुल आशिकीन'

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

खड़ीबोली गद्य का प्राचीनतम नमूना है। प्रामाणिक रूप से दक्खिनी का पहला कवि निज़ामी था जो बहमनी सुल्तान अहमद शाह तृतीय के शासन काल(1460-62 ई.) में मौजूद था। उसकी 'कदमराव व पदमराव' पहली रचना है। मुल्ला वजही का प्रसिद्ध गद्य ग्रंथ 'कुतुब मुशतरी' 1635 ई. में लिखा गया। गवासी की 'मसनवी सैफुलमुल्क' एवं 'वदी उज्जमाल' (1609 ई.) एवं 'तूतीनामा' (1639 ई.) वजही की 'उतुलमुशतरी'(1609 ई.)इल निशाती का मसनवी 'फूलबन' (1655 ई.) प्रसिद्ध काव्य कृतियाँ हैं।[10] पर यह कहना एक सरलीकरण ही होगा कि दक्खिनी की सभी आख्यानक-कृतियाँ प्रेम पर आधारित हैं। 'सबरस' में मानसिक विचार कथा के पात्र बन कर प्रकट हुए हैं। 'कदमराव व पदमराव' तथा 'फूलबन' में जैन परंपरा की एक कहानी अनेक परिवर्तनों के साथ प्रस्तुत की गई है।

'कुतुब मश्तरी' का नायक रचनाकार मुल्ला वजही का आश्रयदाता है। इसका नायक जहाँ ऐतिहासिक व्यक्ति है वहाँ पूरी कथा का विन्यास काल्पनिक है। 'गुलशने-ईश्क', 'मैना सतवन्ती' और 'तूतीनामा' पूरी तरह भारतीय आख्यानों पर आधारित हैं। 'युसुफ जुलेखा' और 'लैला मजनू' फारसी के अनेक महाकाव्यों के प्रभाव को प्रकट करते हैं। यह अलग बात है कि 'अलीनामा' आश्रयदाता पर लिखा गया एक प्रामाणिक ऐतिहासिक काव्य है अपने अधिकांश सीमा वर्णन तक। सारांश यही है कि दक्खिनी के गद्य की पूरी शक्ति का प्रयोग आख्यानक काव्यों में करते हुए ईरान और भारत की साहित्यिक परंपराओं से लाभ उठाया है जिसके उदाहरण रूप में निम्न आख्यानक काव्यों का नाम लिया जा सकता है।

निज़ामी—मसनवी कदमराव व पदमराव
फीरोज—युसुफ नामा
अशरफ – नौसर हार (कर्बला की कथा का वर्णन)

हुसैन की पत्नी जैनब के सौन्दर्य का वर्णन कवि अशरफ ने इस प्रकार किया है–

10)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

"जैनब है उसका नाम/नयन सलोने सो बादाम
माथे जानो चाँद उलाट/पलखां जानो कान कमल
दांत बतीसी तैसी जान/जैसी हीरे केरी खान
सब्ज बाहां केले खांब/जोबन वाली आना आंब ।

अशरफ ने नख-शिख सौंदर्य वर्णन की भारतीय प्रणाली स्वीकार की है। भारतीय साहित्य की रूढ़ उपमाएं ग्रहण की हैं। कान के लिए कमल, दाँतों के लिए हीरक, भुजाओं के लिए केले के स्तंभ और स्तनों के सौंदर्य के लिए आम की उपमा भारतीय साहित्य की परंपरागत उपमाएँ हैं। हाँ आँख के लिए बादाम की उपमा रूढ़ि से हट कर है। प्रेमाख्यान रचनाओं में मुल्ला वजही कृत 'कुतुब मुश्तरी', गवासी कृत 'सैकुल मुलूक व बदीउल जमाल', 'तूतीनामा', 'मैना सतवन्ती' मुकीमी कृत 'चंदर वदन व महीयार', नुस्रती कृत 'गुलशने ईश्क', अमीर कृत 'बहरामो बानू हुसन', सनती कृत 'किस्सा बेनज़ीर', इब्ने न साती कृत 'फूलबन', मलिक खुशनूद कृत 'युसुफ जुलेखा', 'बाजारे हुस्न' 'हश्त-बहिश्त', तबई कृत 'बहरानो गुलन्दाम' और सैय्यद मीरा हॉशमी कृत 'युसुफ जुलेखा' उल्लेखनीय हैं।

गद्य कृतियों में धर्मोपदेश संदर्भ और दार्शनिक चिंतन के प्रसंग में ख्वाजा बंदे नवाज (1388-1423 ई.) कृत मेराजुल आशकीन तर्जुमा वजुहुल आरफीन के कतिपय अंश प्रासंगिक ही माने जाएँगे। यथा–

"अल्ला ताला कुरान में फरमाया है... याने मैं तुम्हारे तना में हूँ, तुम मूझे देखते नई. होर हजरत अली फरमाते हैं ...याने ज कोई अपने नफस कूँ समझा पस वो तहक़ीक समझा अपने परवर दिगार कूँ, ऐ आरिफ वो पाँच वजूदाँ सो कौन कौन, एक वाजिबुल वजूद, दूसरा मुमकिन उल वजूद, तीसरा याने मस्तने उल वजूद चौथा आरफुल वजूद पाँचवाँ वहतुल वजूद। इसमें चार वजूद फना है, पाचवाँ वजूह बका है, जो वजूद बक़ा है सो वो हक ताला का है। कौले ताला ...ऐ आरिफ पहला तन वाजिबुल वजूद पाँच अनासराँ सूँ

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हुआ है माटी, पानी, आग, बाह, खाली । माटी के गुन पाँच रंगाँ, गोश्त, हड, चमड़ा, वाल, माटी का फल सूंघना । पानी के गुन पाँच अराख्त जुलाब, खोप, मगज: आव मने पानी का फल चाखना । आग के गुन पाँच भूक, प्यास, काहिली, नींद, हुजा, झाग का फल देखना । वाद के गुन पाँच हिलना, चलना, भोंकना, काँपना, बिसरना, वादी का फल लगना । ...... होर इस वास्ते के खुदा ए ताला उस रूह भी साकी के वीज कूँ इस खाकी तन के जमीन में पेर्या तो बीज होर झाड़ दोनों मिलकर कावलियत कूँ अपडे याने इस ख़ाकी वजूद कूँ फजले करामत बख्शिया सो इस को सोहवत सूँ है, होर कल्पा व नमाज, रोजा व जकात है ।[11]

वैसे यह अलग बात है कि दक्खिनी गद्य के विकास क्रम को दक्खिनी साहित्य के इतिहासकारों ने 'दौर' नाम देकर इसे विभिन्न कालों में विभाजित किया है । प्रथम दौर 'कुतुवशाही शासन काल' का माना गया है जिसमें निम्न ग्रंथ परिगणित होते हैं–

1. मीराँजी हसन खुदानामा : 'शरहतमही दे हम्मानी' अथवा 'शरह तमहीद'
2. मौला अब्दुल्ला : आहकामुल सलवात (नमाज प्रक्रिया का वर्णन)
3. वजही : सबरस (1636 ई.)
4. मीरा याकूब : शुमा इतुल आत्किया (1688 ई.)
5. आबिदशाह अल हसन उलहुसैनी : कुजउल मोम नीन गुलजार उलसालि कीर (सूफी सिद्धांतपरक)

सुल्तान : दारुल इसरार (सूफी अध्यात्म-तसव्वुफ़)

दक्खिनी गद्य का दूसरा दौर आदिलशाही काल का माना जाता है । जिसने निम्न ग्रंथ उल्लेखनीय माने जाते हैं–

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

1.	शाह बुराहनुद्दीन जानम (1544-1583)	: मारेफत उल कुतुब तथा हश्त मसायल (पत्र गद्य रूप में सूफी अध्यात्म के संबंध में)
2.	अमीनुद्दीन आला (16 वीं शती)	: 'रिसाला गुफ्तार' तथा 'गंज मरफी' (रिसाला गद्य में– गद्य के प्रेरणा स्रोत– अध्यात्म विषय पर)

दक्खिनी गद्य में तीसरे दौर में स्वाभाविक रूप से परिवर्तन आ चुका था। इस काल की एक पत्रिका "तपसीर सूरतुल अजजा" नामक प्राप्त हुई है। डॉ. जोर ने इसे 1150 ई. से पूर्व की कृति प्रमाणित करने का प्रयास किया है, किंतु भाषा के विकास क्रम से उनका अभिमत सही नहीं लगता। वैसे डॉ. जोर ने लिखा है "रिसाले के मुताले (अध्ययन) से पता चलता है कि यह रिसाले के बजाय खुद एक किताब है और इसका मुसन्निफ (लेखक) कोई दकनी आलिम (विद्वान) है जिसने कुरान और हदीस का गहरा मुतालअ: किया है और जिसको लिखने को भी अच्छी महारत (अभ्यास) है। मुसन्निफ का नाम मालूम न हो सका लेकिन यह रिसाल दकनी किताबों में खास अहमियत रखता है।[12]

दक्खिनी गद्य के चौथे दौर में अध्यात्म-विषयों में प्रगति हुई है। जिसकी प्रसिद्ध रचनाएँ निम्न हैं–

1. मारफत उल सलूक हिन्दी–इसके लेखक हैं शाह मुहम्मद वली कादरी। उन्होंने उक्त पुस्तक का फारसी से दक्खिनी में अनुवाद अपने पिता के निर्देश से किया था। इस पुस्तक में कुरान की आयतों का दक्खिनी अनुवाद और हदीस की कथाएँ हैं। 1872 में हैदराबाद के किसी व्यक्ति ने इसकी प्रतिलिपि तैयार की थी, अतः निस्संदेह यह 1872 ई. से पूर्व की रचना है। नसीरुद्दीन हाशमी के अनुसार इसका प्रणयन काल 1157 हि. (1842 ई.) है।[13] अपने काल में इस ग्रंथ को अभूतपूर्व ख्याति प्राप्त हुई और अनेक

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रतिलिपियाँ तैयार हुईं ...पर दुर्भाग्यवश आज एक भी तत्कालीन प्रति उपलब्ध नहीं हुई है। शाह मुहम्मद की अन्य रचनाएँ निम्नलिखित बताई जाती हैं- वाजवुल वजूद नफ्से अम्मारा, नफ्से लवाया, तौहीद अफाली, तौहीद वजूदी आदि। पर आज तक ये अनुपलब्ध रही हैं केवल जिक्र अन्यान्य पुस्तकों में उनका नाम पाया जाता है।

2. रिसाला ए हकायक शाह मीराँ द्वारा रचित यह रिसाला भी सूफी सिद्धांतों तथा आध्यात्मिक विषयों से परिपूर्ण है। वस्तुतः यह लेखक की मौलिक कृति नहीं हैं। यह फारसी को 'वहदतुल वजूद' से दक्खिनी में प्रस्तुत गद्य रचना है। कतिपय अंश प्रासंगिक होंगे "कोई चीज इस सरीका नहीं होर और किसो सरीका में यानी मख्लूकात की सिफनाँ सू होर लवाजमात सूं पाक होर पंजाइए बदतर ही। ऐं अजीज मौजूदा दो सिफत का ही एक वाजिबुल वजूद दूसरा मुमकिनुल वजूद।

3. 'तूतीनामा' का एक अनुवाद अबुल फजुल नामक व्यक्ति ने किया था, जिसकी प्रति ब्रिटिश संग्रहालय में उपलब्ध है। इसी 'तूतीनामा' का दूसरा अनुवाद सैय्यद मुहम्मद कादरी ने किया है, जिसकी प्रतिलिपि 1146 हि. (1731 ई.) में तैयार हुई। इस समय यह प्रतिलिपि उस्मानिया विश्वविद्यालय के हस्तलिखित ग्रंथागार में रखी है। इसकी भाषा-शैली का नमूना है: "पोछे सो तरह-तरह सिफत व सिना पैदा करने जमीन व आसमान के कैफियत यू है के दास्तान कसहाद (अप्रचलन) वो हिकायत (वृत) हजरत बख्शी रहमतुल्ला के बेजा तूतीनामा के साथ इबारत सख्त वो दखील के लिखे।" इस काल की गद्य रचनाओं में चरित्र और अध्यात्म को ही लक्ष्य बनाया गया है।

दखिनी के कतिपय ऐसे भी रचनाकार हैं जिन्हें इतिहासकारों ने किसो दौर के करपाश में आबद्ध नहीं किया परंतु इनमें गद्य की महत्ता को स्वीकारा है। शाह बुराहनुद्दीन (1568 ई.) ऐसे ही एक कीर्तिमना लेखक

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

है जिन्होने प्रश्नोत्तर शैली में 'कलमतुल हकायक' दक्खिनी गद्य में प्रस्तुत किया है। इस्लामी जगत में सूफी सिद्धांतों पर आधृत पुस्तक का काफी स्वागत हुआ है। इनकी गद्य शैली की बानगी है– "तू उसमें एक हो जाता के जद अमरहता उस थे। सवाल जिस वक्त मशाहल होता उस वक्त उस के जुदा दिखता नहीं तो वही तो सपूरन ही ता। व लेकिन इस नूर में सूँ निराकार में कुछ तफावत नहीं चूँकि दरिया क मौज तो वही सूँ निराकार सो है। वी अंत वी निहायत ए जीता भोता कार सब मेरी आरद मंझा उठा हजार इलम मेरी··· मुंजे निशान ना। मुंजे मश्ल ना आना, ना आना, ना कुछ रूप, ना कुछ मानिन्द, ना निशान में हूँ, निराकार सूँ सहजे सहज का।··· ये चारों टूटे बन्द मुझे हुआ सहज अनन्द।"[14]

अब्दुलस्समद धर्मोपदेशक थे। इनका निधन सन् 1651 ई. में हुआ। इन्होंने 'तफसीर वहाबी' नामक पुस्तक लिखी है इस मकसद से कि "भोत तफसीसें अरबी होर फारसी हैं लेकिन दक्खिनी तफसीर शायद के कम हैं, बल्कि नहीं है। इस वास्ते सब मर्दा और औरताँ को कुराने मजाद के दानी मालूम होकर आलम को फायदा होने के वास्ते दक्खिनी जुबान से बनाया हूँ। ... .. अल्ला ताला फरमाता है जो लोग सूद खाये हैं, कयामत के रोज ऐसे उठेंगे जंसा के उनको शंतान लाया है, और जो लोग सूद को और सौदागरी को बराबर समझे हैं उनको भी अजाब (पाप का दण्ड) ऐसा सख्त होयगा।

मुहम्मद शरीफ कृत 'गंज मखफी' (1700) एक गद्यात्मक धार्मिक कृति है जिसमें सत्रहवीं शती के अंत और अठारहवीं शती के प्रारंभ का नमूना उपलब्ध होता है– "रसूलिल्ला फरमाते हैं के फकीरी मेरी बुजुर्गी है, नकल है के एक रोज हजरत रसूलिल्लाह नमाज गुजार यर पीरे मुबारक किबला तरफ करकर बैठे, याराँ पूछे के या रसूलिल्लाह असल फकीर का है। रसूल-लिल्ला फरमाये के असल फकीरी करामत है, जाती करामताँ ते है। याराँ

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

पूछे के दरवेश क्या है ? रसूलिल्ला फरमाये के दरवेश खजाना है, अल्लाताला के खजाने ते भी। यारां पूछे के या रसूलिल्ला फकीरी-किती (कितनी) खरालत (स्वभाव) है ? रसूलिल्ला फरमाए के खामोशी फकीरी कू गनीमत है होर खाना-पीना रिजक अल्लाताला कने तलव ना करना जो कुछ हलाल वजे का रिजक पोंचाता है तो ओ रिजक खाना होर-पीना, होर खुदाए ताला का याद हर वक्त अछना, सारा दिन रोज़ा रखना, सारी रात इबादत करना अगर फाका पेश आया तो खुशहाल होना होर किसी के आगे ना वोलना।

वैसे सबरस कृति को मुल्ला वजही ने सन् 1636 में लिखा था, आज से लगभग 350 वर्ष पहले... पर दक्खिनी हिन्दी की यह गद्य गाथा अपनी रूपक शक्ति, विश्लेषण क्षमता में आज भी साहित्य है। लेखक का विचार है– "इस किताव का नाँव सबरस, सब कूं आवे हवस, बोल वोल कूं चढे उमस, यादगार हो अछेगा दुनिया में लाक बरस। मोती च लजीज, आशिकां के गले का तावीज़ ...जिसमें है कुछ इश्क का दर्द, इस किताब कूं सीने पर ते हिलासी ना, इस किताव के बगैर कोई अपना वक्त भुलासी ना .. अगर दीन होर दुनिया का उम्मीद पाने मंगता है तो ये किताव देख... मुसलमानाँ में पीर मुर्शद होएगा, हिन्दवां में जंगम रुह होएगा (पृ. 9) यो अजब नज्म होर नस़र है, जानो वहश्ति में का कसर है। सतर-सतर पर नूर हरेक बोल में है चक हूर (पृ. 12)... ...

वजही सूफी साधना का कायल है। उन्होंने 'सबरस' में कई प्रकार से सूफी साधना का समर्थन किया है। उन्होंने 'आँसू', 'सौंदर्य' और 'शराब' के माध्यम के भी अपने विचार रखे हैं। स्थानाभाव के कारण प्रसंग कम ही दे पा रहे हैं··· वे प्रेम की अभिव्यक्ति के लिए सौंदर्य को अनिवार्य मानते हुए कहते हैं– "हुस्न आफताव है, परदे में ते उजाला पाडे। हुस्न का हुक्म लाजवाब है। दिल में ते ईश्क कूं मैदान में काड़े। अगर हुस्न पर पर्दा ना करते तो एक आशिक ना जीवता। सब लइ तड़ मरते जिसका हुस्न रस्म है, मोत

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

बड़ा तिलस्म है । इस तिलस्म ते कोई छूट नहीं सक्या, ज कोई जुडा सो टूट नईं सक्या । इश्क के दरिया का तूफान सो हुस्न, आशिक का दीन होर ईमान सो हुस्न ।[15]

शराब की प्रशंसा वजही ने स्थान-स्थान पर पार्थिव शराब और लोकोत्तर पदार्थ के श्लेषात्मक रूप में की है । जे कोई इस शराब का भेद नईं पाया सो उस शराब कूं क्या पछाने ? शराब कूं अपै पीना ना यूं अछना के शराब आपस कू पीबै ।XXX शराब हुस्न का जरीना है, मैखाना इश्क का मदीना है । आशिक की इबादत हुस्न देखना, राग सुनना, शराब पीना है ।

(सबरस पृ. : 29)

नारी के प्रति वजही ने नवीन उदात चेतना और मूल्यवेता की दृष्टि अपनायी है । उनका कथन है : भई औरतां कू शाबास कहना जो अपन शर्मं सूं आपस कूं संभालतियाँ, एक पर तप घालतियाँ एक स खातिर च अपना तन मन वारतियाँ, जानी जोबन गलतियाँ । बाजी औरताँ मर्दां खातिर सतियाँ हुइयाँ है, आग में जालियाँ हैं, औरताँ में भोत शर्म है, औरतों में भोत नेम-धरम है । औरताँ विचारियाँ भोत भलियाँ है । कौन मर्द औरत मुई तो औरत खातिर अपै वी मुआ ? एक मुई तोदूसरी किया । दूसरी औरत का मर्द हुआ औरताँ च में सत है । मर्दों में कहाँ हैं धरम ? सो जनियाँ कू दिखलाते अपनी शरम । ...मर्द कू मोम का दिल, औरताँ का फौलाद का दिल । मोम फौलाद सूं क्या करना भोत मुश्किल । मर्दां की मुहब्बत की झूठी लाफ, अताल दुनियाँ में क्या रहया है इन्साफ

(सबरस पृ. : 157)

ईश्क अगर इबादत है तो हुस्न भी माध्यम होता है पर हमारे हिन्दुस्तान में नालायक पति भी आराध्य और बुद्धिशील स्त्री अपने पवित्र चरित्र के बावजूद दासी मानी जाती है । अंत में श्री रंगपट्टनम जो मैसूर का पार्श्ववर्ती तीर्थस्थल है, कभी पूर्ववर्ती कर्नाटक की राजधानी रहा है । इसमें कभी टीपू

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सुलतान के पूर्वजों का शासन था। उस काल की दक्खिनी की प्रसिद्ध रचनाओं में 'तारीख श्री रंगपट्टन' (1802 ई.) महत्वपूर्ण है, जिसकी भाषा का नमूना दृष्टव्य है– जब दीवान पटन के तख्त के राजा से हुक्म लिय वास्ते तस्क़ीर करने के रियासत मजकूर के तैयार हुआ और असबाव जंगी लिया और फौज तमाम सवाँरा की मराय से बुला भेजा XX कासिद के हात देकर बेंगलूर के रवाना किया और ऐसा उस फरमान में लिखा था के खाख-सवारी मय लश्कर वास्ते लेने सल्तनत देवन हल्ली के रौनक अफजा हुई है बल्के मोरचा बदन की काम गीरी शुरू हुई है।XXX आसिद शापाशप दौड़ कर परवाना ले जाकर राजा मजकूर कते पहुँचा और राजा परवाना लेकर, अपने सर पर रखा और बोसा (चुम्वन) दिया। आडर आखाँ कू लगा कर मुंशी के हाथ पढने दिया।[16]

दक्खिनी की अन्य गद्य रचनाओं में मकदम शाह हुसैनी कृत 'तलाव-तुल वजूह' (1819) है, जिसकी प्रतिलिपि हैदराबाद की स्टेट सेंट्रल लायब्रेरी में उपलब्ध है। साथ ही हम रिसाले तसव्वुफ वगैरा (1823) अब्दुल हक कृत तसव्वुफ- (1842), नूर दरिया कादरी कृत रिसाले वजूदिया दकनी, मीर असगर अली काजी कृत 'गुलदस्त ए हिन्द' (1869), सैय्यद बुलाकी कृत 'मजमुआ मसनवियात' (1877) हज़रत शमस तबरेज कृत 'रिसाला हशोश हिन्दी', गौसी दकनी कृत 'तफसीर पारा ए अम' और बिना रचनाकार एवं प्रतिलिपिकर्ता के उपलब्ध रिसाला तसव्वुफ, तरजुमा चहल हदीस और 'किस्ससुल अंबिका' को कम महत्वपूर्ण नहीं मानते।

संदर्भ-सूची

वासुदेवशरण अग्रवाल : दक्खिनी का पद्य और गद्य (श्रीराम शर्मा) सम्मति पृ. : 1

सुनीतिकुमार चटर्जी : दी ओरिजन एंड डेवलेपमेंट आफ़ द बंगाली लैंग्वेज; कलकत्ता यूनिवर्सिटी प्रेस 1926 ई. (पृ : 12)

11)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

वेदप्रकाश शास्त्री : दक्खिनी का गद्य साहित्य (पृ. 372)

(अ) सैय्यद मुहिउद्दीन कादरी जोर : उर्दू शाहमोर (दृष्टव्य अन्य···)

हकीम शम्सुल्ला : उर्दू ए कदीम

(आ) नसीरुद्दीन हाशमी : दक्कन में उर्दू, मदरास में उर्दू

ए. के. साही : लेखक की व्यक्तिगत वार्ता दिनांक

जनवरी 1990 (गोवा विश्वविद्यालय)

अब्दुल कादर सरवरी : मीर तुल इसरार भूमिका पृ. 9

श्री राम शर्मा : दक्खिनी हिन्दी का साहित्य पृ. 68

सईदा ज़ाफर : सकल सन्त गाथा खंड 2 एकनाथ गाथा अभंग 3944 पृ. 477, 478 संत वाङ्मय, प्रकाशन मंदिर पूना-2, द्वितीय संस्करण 1967

वही : एकनाथ गाथा अभंग 3945 पृ. 478

मातावदल जायसवाल : हिन्दी साहित्य कोश भाग-1 पृ. 283

श्री राम शर्मा : दक्खिनी का पद्य और गद्य पृ. 394

डॉ. जोर : मुताअल : मूख्तूतात, भूमिका

नसीरुद्दीन हाशमी : दक्कन में उर्दू पृ. 337

शाह बुरहानुद्दीन : कमल तुल हकायक पृ. 69

मुल्ला वजही : सबरस पृ. 67

अज्ञात : तारीख रंगपट्टनम

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दक्खिनी मुहावरे

प्रो. एस. आर. कुलकर्णी

भाग्य-चाहे वह किसी वोली या भाषा का हो– कब, कैसे और क्यों उचित होगा इसके संबंध में कोई तर्कसंगत अनुमान या भविष्य कथन करना असंभव होता है। दक्खिनी भाषा और साहित्य को मिसाल के तौर पर लीजिए। इस भाषा को गत साठ-सत्तर वर्षों में कुछ अच्छे दिन आए हैं, हालाँकि इस भाषा में साहित्य-निर्माण को खंडित हुए लगभग दो सदियाँ बीत चुकी हैं। अलवत्ता वोली के रूप में दक्खिनी आज भी दक्षिण भारत के अन्य भाषी क्षेत्रों में जीवित है। फिर भी यह बोली समाज के विशेष वर्गों की मातृभाषा है नहीं। अनपढ़ ग्रामीण समाज और आर्थिक दृष्टि से अति निम्न वर्ग आज दक्खिनी भाषा को अपनी मातृभाषा मानता है। इस समाज को इसका भी पता नहीं है कि उनकी वोली किसी समय समृद्ध साहित्य की भाषा भी थी। इस समाज को इसका भी एहसास नहीं है कि इस भाषा ने भारत के सांस्कृतिक इतिहास में किसी समय महत्वपूर्ण भूमिका निभाई है।

–और तो और हिन्दी-उर्दू भाषा के पंडितों को भी लगभग साठ-सत्तर साल के पहले इस बात का पता भी नहीं था कि 'दक्खिनी' नाम की कोई भाषा मौजूद है।

यह एक महज़ इत्तफ़ाक था कि जनाब मौलवी अब्दुल हक जो उर्दू भाषा के बहुत बड़े समर्थक थे, दक्खिनी भाषा की खोज में सफल रहे। उन्होंने इस अफाहिन दौलत को दुनिया के सामने रखा और तब से दक्खिनी भाषा के संशोधन का सिलसिला शुरु हुआ। इस सिलसिले को सफल वनाने में हैदराबाद के सय्यद मोहिउद्दीन कादरी 'जोर' का भी महत्त्वपूर्ण योगदान

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

रहा है। आज दक्खिनी भाषा को विश्वविद्यालयीन स्तर पर प्रतिष्ठा प्राप्त हो चुकी है। दक्खिनी भाषा आज हिन्दी तथा उर्दू भाषाओं के अध्ययन का एक अंग बन चुकी है। दक्खिनी भाषा का विकास इस प्रकार हो रहा है जिसकी सत्तर-अस्सी वर्ष पूर्व कल्पना करना भी असंभव था। इस विकास को देखकर हम सिर्फ इतना ही कह सकते हैं : कालाम तस्मै नमः !

हिन्दी और उर्दू भाषा के विद्वान दक्खिनी भाषा के अनुसंधान और अध्ययन में लगे हुए हैं। ज़ाहिर है कि इन भाषाओं के विद्वानों की अपनी-अपनी भूमिकाएँ हैं। हिन्दी भाषा की दक्खिनी बोली के तौर पर दक्खिनी का अध्ययन हिन्दी पंडित करते हैं और उर्दू की प्राचीन अवस्था- कदीम उर्दू के संदर्भ में उर्दू भाषा के विद्वान इस भाषा के अध्ययन और अनुसंधान में लगे हुए हैं। दक्खिनी भाषा के उद्भव और विकास के संवंध में यथार्थ अनुसंधान के अध्ययन के कारण ये दोनों भूमिकाएँ अर्धसत्य पर आधारित हैं। वास्तव में दक्खिनी न तो हिन्दी भाषा का प्रादेशिक भेद है और न उर्दू भाषा की पुरातन अवस्था। अपने दीर्घकालीन अनुसंधान से मैं इस नतीजे पर पहुँचा हूँ कि दक्खिनी एक स्वतंत्र भाषा को हैसियत रखती है, इसे हिन्दी की दाक्षिणात्य बोली समझना या उर्दू-ए-कदीम तस्सवुर करना केवल अर्धसत्य पर आधारित है। संपूर्ण सत्य तो यह है कि दक्खिनी एक स्वतंत्र भाषा है।

वास्तव में मेरा आज का विषय यह नहीं है। 'दक्खिनी मुहावरों' के संबंध में मैं अपने विचार पेश कर रहा हूँ। किन्तु, दक्खिनी के उद्भव के बारे में अपनी धारणा सूचित करना मैं उचित समझता हूँ। इसलिए कि मुहावरों का विवरण इस तथ्य को ध्यान में रखते हुए किया जा रहा है।

मुहावरों का अध्ययन केवल भाषाविषयक अध्ययन का एक अंग नहीं है। संस्कृति और सामाजिक जीवन की दृष्टि से भी मुहावरों का महत्त्व असाधारण होता है। भाषा अध्ययन के अंतर्गत वाक् पद्धतियों और मुहावरों को अक्सर क़ायम दृष्टि से नहीं देखा जाता। इसकी एक अहम वजह यह है कि, भाषा के

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

साथ-साथ मुहावरे भी हमें विरासत में मिलते हैं और जो चीज विरासत में मिलती है उसका महत्त्व भी नहीं रहता। मुझे एक किस्सा याद आता है एक हम सफर दोस्त का। यह सज्जन अपने नए बूट को शाल से झटकते थे। शाल तो जूते के मुकावले में ज्यादा कीमती थी। फिर ऐसा क्यों? मेरी आशंका का जवाब मिला।

"भाई साहब जूता मैं ने अपने पैसों से खरीदा है।
शाल पिताजी की दी हुई है।"

विरासत का अहम् ध्यान कैसे होता है इसका यह एक नमूना है, जो खास तौर पर हम सब पर लागू होता है।

असल बात तो यह है कि, सांस्कृतिक परंपरा और सामाजिक जीवन की अनुभूति इन दोनों का निचोड़ मुहावरों में पाया जाता है। सामाजिक अनुभूति के कारण वाक् पद्धतियाँ तथा मुहावरे भाषा में प्रचलित होते हैं। एक उदाहरण पेश करना असमीचीन नहीं होगा। एक आम वाक्य है राह देखना। दक्खिनी में इसी अर्थ में वाक्पद्धति है : वाँट देखना। प्रतीक्षा के अर्थ में इस का उपयोग होता है। चाहे यह प्रतीक्षा बाहरी रास्ते पर नजर रखकर की गई हो या घर के भीतर-भीतर हो रही हो। उमर के लिहाज से प्रतीक्षा के विषय भिन्न होते हैं। अपनी इस उम्र मे मैं प्रतीक्षा करता हूँ अपने पोते के स्कूल से लौटने की। आम तौर पर वह साढ़े चार बजे घर पहुंचता है। यदि 4-35 हुए तो चुलबुली शुरु हो जाती है। घड़ी ठीक है या नहीं, इसका अंदाजा लिया जाता हैं। 4-40 को तो रास्ते पर उतरे बिना रहा नहीं जाता। मोड़पर रुक जाता हूँ। नजर आने वाले लोगों की कसकर तलाशी ली जाती तो है। 4-50 पर आगे बढ़ता हूँ - रास्ते में पोता आता हुआ दिखाई देता है चुपचाप घर आ जाता हूं।

वाँट देखना (मराठी : वाट याहजे) में यह सब अनुभव केंद्रित हुआ है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इसी बाँट पर आधारित दक्खिनी में कई मुहावरें हैं। एक है :

बाँट काडना (मराठी : वाट करणे) रास्ता निकलना। कुछ उलझन की अवस्था में हम सहज में कह देते हैं : 'भाई कुछ रास्ता निकालो'। जंगल में जब सब राहें गुम हो जाती हैं तो बाहर आने के लिए कुछ न कुछ कोशिश करनी होती है याने उस स्थान से मार्ग निकालना होता है। इन्हीं कोशिशों से आखिर सही रास्ता निकल आता है। उलझन दिमागी हो तो भी वही हाल होता है और भाषा को एक मुहावरा मिल जाता है।

बाँट पकडना (मराठी : वाट धरणे) इतिफ़ाक से आप किसी दूसरे की उलझन में फँस जाते हैं। आपका सुझाव आपके मित्र को या तो भाता नहीं या बिल्कुल उतना मालूम होता है। ऐसी अवस्था में या तो स्वयं आप बाँट पकड़ते है या आपको 'बाँट पकड़ो' का इशारा मिल जाता है

न को हो दिवानी पकड़ अपनी बाँट। -मैना व सतवंती 185

बाँट जाना (वाटी जाणें) कॉलेज के जमाने में छात्राओं के रास्ते से उलटी दिशा में जाना वीरता का एक लक्षण माना जाना था। नियत उनको छेड़ने को रहती थी। आज भी कुछ खास परिवर्तन हुआ है ऐसा प्रतीत नहीं होता। इस तरह किसी के रास्ते में आना छेड़ने के अर्थ में प्रकट हुआ और भाषा में एक और मुहावरा भरती हो गया।

इश्क का वंडा है दूर, रह से सीही बांद जा
इश्क कुषल है इस की नको वाँट जा॥

पहली पंक्ति में बाँट का प्रयोग वाच्यार्थ में हुआ है। दूसरी पंक्ति में 'बाँट जाना' मुहावरे के अर्थ में आया है।

बाँट पाडना (मराठीः वाट पाडणे)— इस मूहावरे का प्रयोग नया रास्ता रूढ़ करने के अर्थ में होता है। जंगल में जब सब रास्ते गुम हो जाते हैं तो एकाध

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रो. एस. आर. कुलकर्णी

व्यक्ति अपने विधान के बलबूते नया रास्ता वनाता है। किसी नए युग के प्रदर्शन के लिए भी इस मुहावरे का उपयोग हो सकता है।

इता नई वाँट पाड़्यजा। –सबरस

बारावाँट होना (मराठी : वारा वास होगे) जमीन के एक ही टुकड़े पर से कई रास्ते एक दूसरे का छेद करते हुए निकलते हैं तो वह टुकड़ा छिन्न-भिन्न नज़र आता है। ऐसी छिन्न-भिन्न मानसिक अवस्था का प्रतीक इस मुहावरे में प्रतिबिंबित हुआ है

अब जाऊँ काँ, पूछू किसे, मुझपर कुषल विधराट है

मल बाँट गये होंगी सजन, पत्र जीव बारावांट है ॥–मनमगन

अंतिम पंक्ति में थके बाँट और वारा बाँट पर श्लेप भी आ चुका है। चित्र की भग्नावस्था का निदर्शन इस मुहावरे से हुआ है।

वाँट पर आधारित जो मुहावरे यहाँ दिए गए हैं वे शब्द और अर्थ दोनों दृष्टि से मराठी मुहावरों के समांतर हैं। इसे केवल इत्तेफाक नहीं कहा जा सकता। वाक् पद्धति तो समान सामाजिक अनुभूति की अभिव्यक्ति होती है। दक्खिनी भाषा ने इस सामाजिक अनुभूति को स्वीकार किया है वह भी मराठी शब्दों के साथ-साथ। अर्थविज्ञान (Semantics) तथा समाज-भाषाविज्ञान (Sociolinguistics) इन दोनों दृष्टियों से मुहावरों का महत्त्व ध्यान में रखते हुए मराठी और दक्खिनी इस दोनों भाषाओं का तुलनात्मक अध्ययन न केवल रोचक रहेगा वरन् दक्खिनी के उद्भव के संबंध में नई दिशा उजागर भी करेगा।

इसी प्रकार 'जीव' शब्द पर आधारित कई मुहावरे मिलते हैं। दक्खिनी और मराठी इन दोनों भाषाओं में यही मुहावरे प्रचलित हैं।

जीव न रहना (मराठी : जीव न राहणे) अस्वस्थता का अनुभव इस वाक् पद्धति में अंकित है-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इस नई मेरा जीव तो फिर आई मैं। मैंना व सतवंती, 184

जीव को उटता (जितापर/उठणे) ज्यन गमानेपर आमादा।

दाउद इस खातिर जीव पर उटे। सबरस, 48

जीव यों खेलना (मराठी : जिवापर जिवाशी खेणे)

खेह्या है अपने जीव यों शतरंज। – अलीनामा 114

जीव लाना (मराठी : जीव जावणे) मोहब्बत करना, आस्था रखना।

न को जीव जा इस दगावाज़ सों। कुमुद मुश्तरी, 6.

युद्ध की परिभाषा

प्रलयकारी युद्ध वर्णन दक्खिनी काव्य की एक विशेषता मानी जाती है। इन वर्णनों में युद्ध संबंधी पारिभाषिक शब्दावली तथा वाक्पद्धति अनिवार्य रूप में आती है। आश्चर्य की बात यह है कि इस क्षेत्र के मुहावरे तथा पारिभाषिक शब्दावली दक्खिनी और मराठी में समान हैं।

कटक (फौज), राऊन (घुड़सवार), असिवार (घुड़सवार), भावेकर (भालाधारी), भोडे (तोप) दगाना (डागणे- मराठी- बलि देना), मोड (पराभव), छावणी, उपराळा (मूल सेना के सहायतार्थ भेजी गई कुमुक) चकमक (मुठभेड़)।

कुछ वाक् पद्धतियाँ इस प्रकार हैं :

चाल करना

(मराठी = चाल करणे, आक्रमण करना)।

घोड़ा फेंकना

(मराठी = घोड़ा फेंकना) मैदान की ओर घोड़ा तेज़ी से ले जाना।

भीडे/तोप दागना

(तोप/भीडे डागणे)

तूट पडना

(तुटून घडणे–मराठी) धावा बोलना।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

पाय उतार होना

(मराठीं: पाय उतार होणे) लड़ाई के दरम्यान आमने-सामने आने पर उभय पक्ष के सैनिक अपने-अपने यान को छोड़ उतरते हैं।

झोंट धरनी

(मराठी: झोंट धरणी) उभय पक्ष के सैनिक रणक्षेत्र में जब आमने-सामने जूझते हैं तो आवेश में विवश एक दूसरे के बाल (झोंट) खींच कर भी लड़ाई होती है। इस प्रकार का जूझना 'झोंट धरनी' कहा जाता है।

युद्ध के समय आवेश का सुंदर वर्णन नुसरती की एक पंक्ति में मिलता हैं : हर येक कुसल (घास) वरचा वनी, काँटा तो हर यक खंजीर।

—अलीनामा 102

सामान्य जनजीवन

सामान्य जनजीवन पर आधारित कई मुहावरे दक्खिनी साहित्य में प्रचलित हैं। इन से कुछ तो आम अनुभव पर आधारित हैं, किंतु अधिकांश मुहावरों पर मराठी भाषा का गहरा प्रभाव परिलक्षित है :

जलने पर तेल सटना

(मराठी: आगीत तेल ओतणे)

दांतों में बोट पकडना

(मराठी : दातांत बोड धरणे/तोंडांत बोट धरणे)

दूध का जल्या छाँच फूंक पिता

(मराठी: दुधाने तोंड भाजल्यास ताक फुंकून पितो)

पेट पकड़ को हँसना

(मराठी : पोट धरुन हसणे)

नांव करना

(मराठी : नांव करणे) कीर्ति संपादन करना।

भले मर्दा को अचता है गर्ज यक नांव करने में। अलीनामा 184

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

नाँव छोडना

(मराठी: नाव सोडणे/नाव टाकणे) संवंध तोड़ना
दिया जोरफ छोड तुज नांव को ।—**मैना सतवँती** 166

समा न सके म्यान में दो फिरंग

(मराठी: एका म्यानात दोन तरवारी राहत नाहीत)

सपत घालना

(मराठी : शपथ घालणे) हिन्दी-उर्दू में वाक्पद्धति है कसम खाना। किंतु दक्खिनी और मराठी में 'शपथ घालना' प्रयुक्त होता है ।

आखिर में एक दिलचस्प मुहावरा दिया जाता है ।

जिस चूले की कोछती उसी में च अच्छीं जलनी

(मराठी : ज्या चुली तले थाकूड तळत्र चुलीत चांगले जलते) इस मुहावरे का इशारा वर्तमानकालीन महिला मुक्ति आंदोलन के खिलाफ है। विवाहिता पत्नी अपने माँ-बाप के घर पति का घर छोड़कर जव आती है तो उसे यह मुहावरा सुनाया जाता है ।

मुहावरा भाषा का एक अलंकार होता है । साथ ही सांस्कृतिक जीवन तथा सामाजिकता का एक आयना भी । दक्खिनी भाषा इस प्रकार के मुहावरों से अत्यंत समृद्ध है । भाषा की दृष्टि से तो ये मुहावरे महत्वपूर्ण हैं ही किन्तु सांस्कृतिक परंपरा तथा जनजीवन की झांकी भी इनमें मिलती है जिसे ढूंढ निकालना अनुसंधानकर्ताओं के लिए एक चुनौती है। इन मुहावरों का और भी एक अंग अधिक खोज का मोहताज है- वह है इनका मराठीपन ।

इस विशेषता की सही ढंग से खोज हो सकती है। दक्खिनी भाषा के उद्भव के संवंधी में सही नतीजे पर पहुँचने पर । इस भाषा के उद्भव के बारे में जो भी सिद्धांत आज प्रचलित हैं उन पर पुनर्विचार करना नितांत आवश्यक है । इस प्रकार का पुनर्विचार होने पर ही दक्खिनी मुहावरों के मराठीपन पर अधिक प्रकाश पड़ सकता है ।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दक्खिनी में वैज्ञानिक साहित्य

डॉ. अफ़ज़लुद्दीन इकबाल

दक्खिनी भाषा के विषय में आम विचार यह है कि इसमें सिर्फ शायरी और किस्सा-कहानियों के अलावा अधिकांशतः इस्लामी साहित्य के ग्रंथ हैं किंतु ऐसा नहीं है। वैज्ञानिक विषयों पर भी दक्खिनी भाषा में कई पुस्तकें उपलब्ध हैं। यह सर्वविदित है कि बहमनी काल में दक्खिनी भाषा बोलचाल की भाषा नहीं रह गई थी, बल्कि उसमें लिखित साहित्य की भी रचना होने लगी। जब बहमनी साम्राज्य का पतन हुआ तो दक्कन में पाँच साम्राज्य स्थापित हुए। मुख्य शहर बीदर में, जो कि पहले बहमनी सल्तनत की राजधानी थी, बरीदशाही सत्ता स्थापित हुई। इस सल्तनत के शासक अमीर बरीद (1504–1543 ई.) के एक दरबारी कवि कुरेशी ने काम-शास्त्र पर एक पुस्तक की रचना की जिसे बहूक बहल, बहूक पहल और बहूक गिल के नामों से उद्धृत किया गया है। यह पुस्तक वास्तव में दक्खिनी कोक शास्त्र है। अपने विषय पर दक्खिनी में यह पहली पुस्तक समझी जाती है। इसमें स्त्रियों के प्रकारों को बताया गया है। इसके अतिरिक्त विभिन्न आसनों की वज़ाहत की गई है। इस पुस्तक में 45 चित्र हैं, जिसमें 28 आसन के संबंध में हैं, शेष में स्त्रियों के प्रकार बताए गए हैं। इस पुस्तक का प्रथम नुस्खा सालारजंग ग्रंथालय में उपलब्ध है। (इसके अलावा कलकत्ता की एशियाटिक सोसायटी आफ बंगाल के ग्रंथालय में भी इसका एक नुस्खा उप-लब्ध है।) कुरेशी ने इस पुस्तक का फारसी से दक्खिनी में कविता के रूप में अनुवाद किया है। बहरहाल यह अपने विषय की एक महत्वपूर्ण पुस्तक है, बाद में अन्य लोगों ने भी इस विषय पर दक्खिनी गद्य लिखा। इस संबंध

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

में 'लज्जतुन्निशा' उल्लेखनीय है, जो कोका पंडित की पुस्तक का अनुवाद है जिसमें 22 अध्याय हैं। यह अनुवाद 1818 ई. से पूर्व का है। इसका एक नुस्खा 'इरादे अदबियात उर्दू' में उपलब्ध है। अंतिम शासक अबुल हसन ताना शाह के पीर भाई और शाह राजू के मुरीद आबिद शाह ने भी बन्दा नवाज की फारसी तसनीफ (प्रकाशक) 'मकलियात बन्दा नवाज़' का 1680 ई. में दक्खिनी में अनुवाद किया था। इसमें 63 रोगों के इलाज और उसके नुस्खे दिए गए हैं। इस पुस्तक का एक नुस्खा 'इदारे अदबियात' में उपलब्ध है।

आदिलशाही शासक इब्राहीम आदिल शाह द्वितीय को शायरी के साथ संगीत में भी बड़ी रुचि थी। उन्हें संगीत कला में उस्ताद (गुरु) का सम्मान दिया जाता था। इन्होने गीतों पर आधारित एक पुस्तक 'नवरस' लिखी हैं जिसे विभिन्न राग और रागिनियों में गाया जा सकता है। वे संगीत कला शिक्षा के प्रवर्त्तक के रूप में जाने जाते हैं। डॉ. नज़ीर अहमद ने इस पुस्तक का प्रकाशन किया हैं। सन् 1686 ई. में लगभग संपूर्ण दक्कन मुगल साम्राज्य में सम्मिलित हो गया। इस काल में दक्खिनी पर जो वैज्ञानिक पुस्तकें प्राप्त हुई हैं, इनका एक संक्षिप्त परिचय यहाँ दिया जा रहा है।

मुजरंबातेतिब- किसी अज्ञात लेखक ने 1785 ई. में पहले दक्खिनी में 'मुजरंबातेतिब' के नाम से यह पुस्तक लिखी है, जिसमें विभिन्न रोगों का वर्णन और इनका इलाज और दवा के नुस्खे बताए गए हैं। इस पुस्तक का एक प्रथम नुस्खा गवर्नमेंट के ओरियन्टल शंकरपेट लाइब्रेरी हैदराबाद में उपलब्ध है।

तिब्बे शहाबी- तिब्बे यूनानी की प्रसिद्ध पुस्तक तिब्बे शहाबी है। किसी अज्ञात लेखक ने सन् 1785 ई. में इसके कुछ भाग का दक्खिनी कविता में अनुवाद किया था। इस अनुवाद में कुछ रोगों का वर्णन है। उनको पहचानने के उपाय, इनका इलाज और दवाओं का उल्लेख है। अन्त में इस विषय पर दो पृष्ठ दक्खिनी गद्य में भी लिखे गए हैं। यह पुस्तक बहुत ही प्रसिद्ध हुई।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इसके कई भाग सालारजंग ग्रंथालय, इदारे अदवियत और गवर्नमेंट ओरिएन्टल शंकरपेट लाइब्रेरी में उपलब्ध हैं।

रिसाला ग्रहण- फारसी पुस्तक 'खुलासा-उलनुजूम' का मीर कमरुद्दीन ने लगभग 1785 ई. में दक्खिनी में अनुवाद किया था। इस पत्रिका में सूर्य-ग्रहण और चन्द्र ग्रहण के वर्णन और उनके प्रभाव की चर्चा की गई हैं। इसका एक नुस्खा 'इदारे अदवियात उर्दू' में उपलब्ध है।

मुजर्रब अलतहकीकात- हकीम सैयद मोहम्मद अली विन हकीम सैयद अबुल हसन एक योग्य हकीम थे। तिब इनका खानदानी पेशा था। उन्होंने लगभग 1785 ई. में 'मुजर्रब अल तहकीकात' के नाम से दक्खिनी में एक पुस्तक लिखी थी। इस पुस्तक में 65 अध्याय हैं। प्रत्येक अध्याय में एक रोग और उसकी दवा का वर्णन मिलता है। दवा के अतिरिक्त परहेज़ और भोजन का भी विवरण मिलता है। यह पुस्तक हकीम सैयद मोहम्मद अली के निजी अनुभवों का संकलन है। इनकी एक हस्तलिखित प्रति गवर्नमेंट ओरिएन्टल शंकरपेट लाइब्रेरी में उपलब्ध है।

रिसाला इल्मे तिब- मद्रास के निवासी सैयद बुढ़न विन सैयद अली कादरी ने लगभग 1785 ई. में तिब्ब यूनानी पर एक दक्खिनी पत्रिका 'इल्मे तिब' के नाम से प्रकाशित की। इस पत्रिका में बड़े परिश्रम और खोज के साथ कुछ रोगों के नुस्खे दिए गए हैं। इसकी एक प्रति सालारजंग संग्रहालय में उपलब्ध है।

मुजर्रबाते अकबरी- शाहबाज खाँ हैदराबादी ने मोहम्मद अकबर विन मोहम्मद मोकीम की प्रसिद्ध पुस्तक 'मुजर्रबाते अकबरी' का 1791 ई. में दक्खिनी भाषा में अनुवाद किया था। यह पुस्तक कई अध्यायों में विभाजित है। विभिन्न रोगों के नुस्खे और उनकी दवा करने के उपाय लिखे गए हैं। इसकी एक प्रति कुतुबखाने सालारजंग में मौजूद है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

खाने नियमत– किसी दक्खिनी वैद्य ने 1816 ई. में 'खाने नियमत' के नाम से एक कविता लिखी है। इस पुस्तक की विशेषता यह है कि इसमें भोजन के द्वारा रोगों का निदान करने के तरीके दिए गए हैं। इस पुस्तक की एक प्रति गवर्नमेंट ओरियेन्टल शंकरपेट लाइब्रेरी में उपलब्ध है। यह लेखक का मूल नुस्खा है। इसके अतिरिक्त घोड़ों की पहचान, उनकी विशेषता, उनकी बीमारी की पहचान और उनके इलाज के बारे में भी कई पुस्तकें दक्खिनी में मिलती हैं, जिनमें अब्दुल कादर वेल्लूरी की 'दल दल नवाजनामा' सन् 1806 ई. के करीव की हैं। तालेवर खाँ महमूद जई हैदरावाद की जंगे नवाजनामा (1828 ई.) और किसी अज्ञात लेखक की फर्सनामा (लगभग 1834 ई.) विशेष रूप से उल्लेखनीय है। इन पुस्तकों के नुस्खे सालारजंग लाइब्रेरी, कुतुबखाने, इदारे अदबियात उर्दू और गवर्नमेंट ओरिएन्टल शंकरपेट लाइब्रेरी में उपलब्ध है।

19वीं शती के दो-तीन दशक तक मद्रास का फोर्ट सेन्ट जार्ज कालेज दक्खिनी भाषा के प्रचार और प्रसार का एक महत्वपूर्ण केन्द्र रहा है। यह दक्षिण भारत की वह प्रथम शैक्षिक एवं साहित्यिक संस्था थी जो दक्खिनी भाषा के प्रचार और प्रसार के लिए सुव्यवस्थित ढंग से कार्य कर रही थी। इस कालेज का उद्देश्य भी वही था जो फोर्ट विलियम कालेज कलकत्ता का था। इन दोनों संस्थाओं का उद्देश्य जूनियर सिविल कर्मचारियों का शिक्षण-प्रशिक्षण और उन्हें हिन्दुस्तानी भाषाओं से परिचित करवाना था। ईस्ट इंडिया कंपनी ने दूसरी देशी भाषाओं की तुलना में उर्दू को ज्यादा समर्थन दिया। जहाँ कलकत्ता में हिन्दुस्तानी में पुस्तकें तैयार की जा रही थीं। वहीं मद्रास में दक्खिनी भाषा का प्रचार हो रहा था और उसके प्रचार-प्रसार और प्रकाशन में रुचि ली जा रही थी। उर्दू के क्षेत्र में जिस तरह फोर्ट विलियम कालेज के डॉ. ज़ान क्राइस्ट गिल का नाम बड़े सम्मान के साथ लिया जाता है, उसी प्रकार फोर्ट सेन्ट जार्ज कालेज मद्रास के डॉ. एडवर्ड वेलफोर्ड का नाम भी विशेष उल्लेखनीय है। इनकी प्रसिद्ध पुस्तक 'दी एनसाइक्लोपीडिया

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

आफ़ इंडिया' के अध्ययन से प्रतीत होता है कि इनकी आयु का अधिकांश समय मद्रास में बीता। यहाँ वे विभिन्न महत्वपूर्ण पदों पर कार्यरत रहे। 1876 ई. में जब उन्होंने इंगलैण्ड को प्रस्थान किया तो मद्रास के लोगों ने उनको बड़े सम्मान के साथ विदा किया। उनके लिए शानदार जलसे का प्रबंध किया और उनकी सेवा के लिए आभार प्रकट किया।

मद्रास के मुसलमानों में पूर्वी विशिष्ट शिक्षा पद्धति का प्रचार व प्रकाशन और वैज्ञानिक तथ्यों को चमकाने में डॉ. बेलफोर्ड का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। उन्होंने 29 नवम्बर 1835 ई. को मद्रास में एक साइंटिफिक सोसायटी 'मजमुए इल्मो हुनर' के नाम से स्थापित की थी, जिससे विद्वान चर्चा-परिचर्चा कर सकें तथा आधुनिक शैक्षिक और वैज्ञानिक समस्याओं से परिचित हो सकें। इस अंजुमन के जलसे नियमित रूप से आयोजित होते थे। डॉ. वेलफोर्ड और मद्रास के वैज्ञानिक विभिन्न वैज्ञानिक विषयों पर व्याख्यान दिया करते थे। ये सब दक्खिनी भाषा में होते थे। 12 दिसम्बर 1853 ई. को डॉ. वेलफोर्ड ने बरसात और उसके रहस्य, उसके भाग एवं उसकी मात्रा के संबंध में एक ज्ञानवर्द्धक व्याख्यान दिया। 17 दिसम्बर 1853 ई. को मिर्जा अब्दुल बाकी वफा ने, जो फोर्ट सेन्ट कालेज से जुड़े थे, चिकित्सा और दर्शन, भाप और धुंआ, शबनम की किस्में, बादल, वर्फ, हवा, बिजली आदि विषयों पर एक विशेष व्याख्यान दिया। जनवरी 1884 ई. में खैरुद्दीन खाँ बहादुर ने ध्वनि और उसके प्रकारों जैसे विषयों पर महत्वपूर्ण भाषण दिया। 1854 ई. में शेखम जंग ने परमाणु विषय पर चर्चा की। इस प्रकार वैज्ञानिक विषयों पर विभिन्न भाषण हुआ करते थे। डॉ. वेलफोर्ड ने इस सभा के माध्यम से नई यूरोपीय शिक्षा की ओर मुसलमानों का ध्यान आकर्षित किया और उनमें वैज्ञानिक शिक्षा के प्रति रुचि पैदा की। वर्षों बाद सर सय्यद अहमद खां ने भी इस आवश्यकता का अनुभव करते हुए 1863 ई. सांइन्टिफिक सोसायटी स्थापित की। डॉ. वेलफोर्ड ने न केवल सोसायटी ही स्थापित की बल्कि स्वयं भी लिखा और दूसरों से लिखवाया भी। इनकी कुछ वैज्ञानिक पुस्तकों का संक्षिप्त परिचय नीचे दिया जा रहा है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

उसूल फन्नेकिबालात– (नर्सिंग फन्ने विलादत) डॉ. एडवर्ड बेलफोर्ड की एक महत्वपूर्ण पुस्तक उसूल फन्नेकिबालात (नर्सिंग फन्ने विलादत) है। यह पुस्तक वास्तव में डॉ. जी. टी. कन्ववेस्ट के लेख 'आउट लाइन्स आफ मिड वाइफरी' (Outlines of midwifery) का दक्खिनी में अनुवाद है। यह अनुवाद 1849 ई. में पूर्ण हुआ। यह 1852 ई. में फोर्ट सेन्ट जार्ज की प्रेस से प्रकाशित हुआ। इस पुस्तक में एक ओर अंग्रेजी मूल है तथा दूसरी ओर इसका दक्खिनी में अनुवाद है। इस पुस्तक में 28 चित्र हैं। अन्त में तिब्ब संबंधी पारिभाषिक शब्दों का अनुवाद भी दिया गया है। इस पुस्तक के अनुवाद में डॉ. बेलफोर्ड की मुंशी अमीरुद्दीन कुरैशी, मुंशी कादिर अली किरमानी और मुंशी गुलाम हुसैन मारिफ खां ने सहायता की थी। डॉ. बेलफोर्ड ने इस पुस्तक के अनुवाद के तीन कारण बताते हुए प्रस्तावना में लिखा है कि अगर इस पुस्तक को शैक्षिक पुस्तकों की श्रेणी में रखा जाए तो छात्र इससे काफी लाभान्वित होंगे। दूसरा कारण इन्होंने यह बताया कि तमिल, तेलुगु, कन्नड़ और मराठी भाषाओं में ऐसी कोई पुस्तक उपलब्ध नहीं है, इसलिए भी वह इसको लोगों के समक्ष चाहते थे। तीसरा कारण यह बताया कि इस विषय पर खुद अंग्रेजी में भी अधिक पुस्तकें नहीं हैं। यह पुस्तक फ्रांस, इंगलैंड और अमेरिका में एक साथ प्रसिद्ध हुई। फन्ने तिब की नवीन जानकारी को लोगों तक पहुँचाने के लिए इस पुस्तक का अनुवाद करना आवश्यक था। यह पुस्तक डॉ. बेलफोर्ड का एक महत्वपूर्ण शैक्षिक योगदान है।

1851 ई. में डॉ. बेलफोर्ड नें रसायन शिक्षा पर एक पुस्तक 'गुफ्तगूं कीमिया' संवाद के रूप में (conversation on chemistry) प्रकाशित की। यह पुस्तक पहले अंग्रेजी और उर्दू में कलकत्ता से प्रकाशित हुई, फिर मद्रास के जिलों के मुहावरों के अनुसार बदलकर यानी दक्खिनी में वहाँ की संस्थाओं के लिए प्रकाशित हुई। यह अपने विषय की एक उत्कृष्ट कृति है। डा. बेलफोर्ड की एक और महत्वपूर्ण पुस्तक 'इल्मे हय्यत का रिसाला' है। 135 पृष्ठों पर विस्तृत यहरिसाला (पत्रिका) 1858 ई. में प्रकाशित हुआ। कुतुब

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

खाने सालारजंग में इसकी एक प्रति सुरक्षित है। डॉ. वेलफोर्ड के ही प्रयासों का फल था कि मद्रास के मुसलमान अंग्रेज़ी की वैज्ञानिक पुस्तकों का दक्खिनी में अनुवाद करने लगे थे। चुनांचे जून 1840 ई. कैप्टन जार्ज वालन्सी ने रेशम के कीड़ों के पालन-पोषण के बारे में एक पुस्तक 'सिफतुल हरीर' लिखी। इसको बिन मोहम्मद हबीबुल्लाह ने दक्खिनी में रूपांतरित किया है। यह अनुवाद मद्रास नगर की प्रसिद्ध प्रेस 'जाम-ए-उल' अखबार से पाँच महीने बाद नवम्बर 1844 को प्रकाशित हुआ।

मद्रास ही के किसी अज्ञात लेखक ने 'इल्मे जुगराफ़िया' (भूगोल शिक्षा) की एक पुस्तक 'खुलासा इल्मे अरज़' लिखी, जो किसी अंग्रेजी पुस्तक का अनुवाद है। 1843 ई. में छपी इसकी एक प्रति मद्रास में अमानती कुतुबखाने में उपलब्ध है। दक्कन में वैज्ञानिक साहित्य पर यह एक संक्षिप्त चर्चा थी जिससे मालूम होता हैं कि दक्खिनी में वैज्ञानिक साहित्य की कमी नहीं रही है।

13)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दक्खिनी पर तेलुगु का प्रभाव

डॉ. विजयराघव रेड्डी,
डॉ. शकुंतला रेड्डी

काफ़ी अरसे से दक्खिनी बोलनेवालों को हिन्दी में प्रशिक्षण देते हुए हमें यह महसूस हुआ कि अन्य द्रविड़ भाषियों की तुलना में इन की हिन्दी में सुधार लाना कष्टसाध्य है। मस्तिष्क में प्रबल रूप से बैठी हुई तथा दैनंदिन व्यवहार में धड़ल्ले से प्रयुक्त होनेवाली दक्खिनी का विस्मरण कर पाना और उसके स्थान पर मानक हिन्दी को ग्रहण कर पाना मुश्किल होता है। अन्य भाषा अधिगम के संदर्भ में दक्खिनी भाषियों की स्थिति को हम विशिष्ट कह सकते हैं। सामान्य रूप से अन्य भाषा सीखने में मातृभाषा के व्याघात (Interference) की स्थिति देखी जा सकती है। लेकिन यहाँ हम दोहरे व्याघात की स्थिति पाते हैं: मातृभाषा– दक्खिनी–हिन्दी। यहाँ दक्खिनी से प्रयोक्ता का किसी न किसी तरह काम चल ही जाता है। अत: प्रयोक्ता समझने लग जाता है कि उसके पास प्रकार्यगत सामर्थ्य (functional competence) है और इस कारण सरलीकरण प्रक्रिया से वशीभूत होकर वह सीखना बंद-सा कर देता है।

सरलीकरण प्रक्रिया मनोवैज्ञानिक है, जो मानव के हर प्रकार के व्यवहार में देखी जाती है। दक्खिनी सरलीकरण प्रक्रिया की उपज है जो पहले पिजिन के रूप में रही और बाद में क्रियोल बन गई। जब दो भिन्न भाषा-भाषी समुदाय संपर्क में आते हैं, तब उनके द्विभाषिक संपर्क के परिणाम स्वरूप एक तीसरी भाषा जन्म लेती है जो पिजिन कहलाती है। पिजिन में दोनों भाषिक समुदायों की विशेषताएँ मिली रहती हैं। इस दृष्टि से दक्खिनी

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

पिजिन है जिस में हिन्दी भाषी समुदाय और दक्षिणी भाषियों की भाषिक विशेषताएँ मिली हुई हैं। दो भिन्न भाषी समुदाय किसी विशेष उद्देश्य से मिलते हैं तब पिजिन की उत्पत्ति होती है और वह दो भिन्न समुदायों में संप्रेषण संभव करने में सहायक होती है। दक्खिनी के संदर्भ में यह समाज दक्षिण भारत का वह समाज है जो दक्खिनी को संप्रेषण के माध्यम के रूप में प्रयोग करता है। पिजिन बोलनेवाला व्यक्ति द्विभाषी होता है। पिजिन के व्यवहार में संप्रेषण पर विशेष बल दिया जाता है, न कि व्याकरणिक शुद्धता पर। अतः पिजिन सामाजिक यथार्थ होती है। कालक्रम में पिजिन बोलनेवाले अपनी मातृ-भाषाएं भूल जाते हैं और उनकी दूसरी पीढ़ियाँ पिजिन को ही मातृभाषा के रूप में स्वीकार करती हैं, तब वह क्रियोल कहलाती है। इस अर्थ में दक्खिनी अब क्रियोल की कोटि में आ गई है– कम से कम इस अंचल के अधिकांश लोगों के संदर्भ में जो जनगणना में अपनी मातृभाषा को शान से उर्दू घोषित कर लेते हैं, भले ही वह उर्दू न होकर दक्खिनी होती है। विडंबना देखिए कि सन् 1891 की जनगणना में दक्खिनी को मातृभाषा के रूप में बोलनेवालों की संख्या साढ़े छत्तीस लाख थी जो 1971 की जनगणना में घट कर सिर्फ ढाई सौ रह गई। इसका कारण कालक्रम में दक्खिनी की सामाजिक प्रतिष्ठा में ह्रास होना ही है। इससे स्पष्ट है कि दक्खिनी संकर भाषा है जो इस अंचल के खास कर मुस्लिम समाज में संप्रेषण के माध्यम के रूप में सदियों से काम में आ रही है। आर. आर. के. हटंमन कहते हैं कि भाषाएँ सर्वत्र स्वतंत्र व्यवस्थाएँ नहीं होतीं। वे आपसी गहन संपर्क के कारण एक दूसरी में व्याप्त (Interpenetrate) भी हो जाती हैं। इसे भाषाविज्ञान की शब्दावली में अभिसरण (convergence) या विलयीकरण (fussion) भी कहा जाता है। पिजिन के संदर्भ में यह आपसी संपर्क विशिष्ट प्रकार के होने के कारण यहाँ संकरण (hybridation) की स्थिति उत्पन्न होती है। संकरण स्थिति की दृष्टि से दक्खिनी बुनियादी संकरण (fundamental hybridation) से संबंधित है। अपनी संरचनात्मक विशेषताओं के कारण ऐसी संकर भाषा

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

को कई नामों से अभिहित किया जाता है। जैसे, संक्षिप्तिकृत लघुकृत भाषा (reduced language), मिश्रित भाषा (mixed language), न्यूनतम व्याकरणवाली भाषा (language of minimum grammar) आदि। इसी कारण डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी ने ऐसी हिन्दी को काम चलाऊ/बाज़ारू या लघु हिन्दी के नाम से अभिहित किया।

'सरलीकरण और संकरण' इन दो प्रक्रियाओं की दृष्टि से दक्खिनी की कुछ संरचनाओं का भाषावैज्ञानिक विश्लेषण प्रस्तुत करने का एक लघु प्रयास इस आलेख में किया गया है।

दक्खिनी पर उपलब्ध भाषागत अध्ययन से संबंधित सामग्री के अवलोकन से लगता है कि दक्खिनी की संरचना का विश्लेषण भाषावैज्ञानिक दृष्टिकोण से तो किया गया है, लेकिन उस पर विद्यमान दक्षिणी भाषाओं के प्रभाव को लेकर विस्तार से कोई अध्ययन सामने नहीं आया। हाँ, डॉ. श्रीराम शर्मा आदि विद्वानों ने यत्र-तत्र ऐसे प्रभाव का संकेत मात्र किया, कुछ उदाहरण भी प्रस्तुत किए। ऐसे संकेत या ऐसे उदाहरण शब्दावली पर या ध्वनि प्रक्रिया पर अधिक मिलते हैं। इस संदर्भ में डॉ. भोलानाथ तिवारी की यह टिप्पणी द्रष्टव्य है– "दक्खिनी का मूल आधार दिल्ली के आसपास की चौदहवीं-पंद्रहवी सदी की खड़ीबोली है, किंतु इस में कुछ तत्व पंजाबी, हरियाणी, ब्रज तथा अवधी के भी हैं। मुसलमानों (फ़ौज, फ़कीर, दरवेश) के साथ यह भाषिक रूप दक्षिण में पहुँचा था और धीरे-धीरे कर्नाटक, आंध्र प्रदेश, तमिलनाडु, केरल, महाराष्ट्र तथा गुजरात में फैल गया। स्वभावतः इस पर इन सभी क्षेत्रों की भाषाओं का, मुख्यता शब्द भंडार के क्षेत्र पर प्रभाव पड़ा है।" इस धारणा के कारण कि दक्खिनी पर दक्षिणी भाषाओं की शब्दावली का मुख्यतः प्रभाव पड़ा है, विद्वानों ने इस बात पर ध्यान नहीं दिया कि दक्खिनी भाषाओं की व्याकरणिक संरचना पर दक्षिण की भाषाओं का भी प्रभाव पड़ा है। हाँ, इधर कुछ वर्ष पहले इस दिशा में अंग्रेजी में कुछ छिट-पुट काम हुए हैं जैसे; (1) 1976 में प्रकाशित एम. एस. कादिर का लेख– Relative Partici-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

ple in Dakhini Urdu with special reference to Tamil and Telugu, (2) 1984 में प्रकाशित डॉ. वी. स्वराज्य लक्ष्मी का शोध प्रबंध- Influence of urdu on Telugu, जिसके अंतिम अध्याय में Influence of Telugu on Dakhini पर थोड़ी-सी व्याकरणिक चर्चा हुई है। (3) दो वर्ष पहले प्रस्तुत अपने शोध प्रबंध– some aspects of Hindi–Urdu syntax with special reference to convergence में भी डॉ. हरवीर अरोरा ने बीच-बीच में इस विषय पर चर्चा की है। इस निबंध में दक्खिनी की संरचना पर तेलुगु के प्रभाव पर विचार करने का प्रयास किया गया है।

निबंध के विश्लेषण के लिए दक्खिनी की भाषा-सामग्री (data) निम्नलिखित स्रोतों से प्राप्त की गई हैं–

1. चन्दरवदन व महयार (1980) डॉ. सय्यदा जाफ़र एवं ओम प्रकाश निर्मल (सं.)
2. दक्खिनी का पद्य और गद्य (1954) डॉ. श्रीराम शर्मा (सं.)
3. दक्खिनी का उद्भव और विकास (1964) डॉ. श्रीराम शर्मा (स.)
4. पुरुषोत्तम कवि के हिंदुस्तानी नाटक (1979) श्रीमती शारदा (सं.)
5. प्रयोग और प्रयोग (1981 प्रो. वी. रा. जगन्नाथन (पृ. 428-436)
6. रंगारेड्डी जिले (आं. प्र.) के हिन्दी अध्यापकों के वार्तालाप में प्राप्त सामग्री। ये अध्यापक केंद्रीय हिन्दी संस्थान, हैदराबाद केंद्र द्वारा फ़रवरी-मार्च 89 में आयोजित नवीकरण पाठ्यक्रम में सम्मिलित थे।

ध्यान देने की बात यह है कि निबंध का शीर्षक 'दक्खिनी पर तेलुगु का प्रभाव' रखा गया है। यह प्रभाव तेलुगु तक सीमित नहीं है। इसे चारों द्रविड़ भाषाओं तक भी विस्तृत किया जा सकता है, क्योंकि संरचना की दृष्टि से दक्षिण की चारों भाषाओं में काफ़ी साम्य है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

पूरे डेटा में प्राप्त उदाहरणों को निम्नलिखित तेरह वर्गों में विभाजित करते हुए प्रभाव को तेलुगु के उदाहरणों से प्रमाणित करने का प्रयास किया गया है।

(1) सर्वनाम/सर्वनाम रूपावली, (2) सहायक क्रिया, है/था का लोप (3) होता/होना का विशिष्ट प्रयोग, (4) लेना/ला लेना क्रिया का विशिष्ट प्रयोग, (5) कथनात्मक (quotative) के रूप में बोलके, करके का प्रयोग (6) प्रश्नवाचक क्या के स्थान पर (Do type) प्रश्न वाक्यों का प्रयोग (7) कू/कने का प्रयोग, (8) संबंधवाचक 'जो... वह' का लोप और उसके स्थान पर 'सो' रचना का प्रयोग, (9) कते का प्रयोग, (10) क्रिया पुनरुक्ति, और क्रिया द्विरुक्ति, (11) संरचनागत अन्य विशिष्ट प्रयोग, (12) शब्द स्तर पर प्रति प्रभाव (counter influence) और (13) मुहावरे

नीचे प्रत्येक वर्ग की व्याख्या सोदाहरण दी गई है और साथ में तेलुगु के उदाहरण देकर तेलुगु के प्रभाव को क्रमशः दिखाया गया है–

1. सर्वनाम/सर्वनाम रूपावली

यह वर्ग नौ उपविभागों में विभक्त है।

(1) अपन : तेलुगु में उत्तम पुरुष बहुवचन के दो रूप विद्यमान हैं। श्रोता रहित रूप– मेमु, श्रोता सहित रूप-मनमु, हिन्दी में यह विभाजन नहीं हैं। दक्खिनी में 'मनमु' को द्योतित करने के लिए 'अपन' शब्द का प्रयोग किया जाता है। जैसे;

बाबा अपन गाँव कू कब जाते ?

(2) कोन भी : अन्य द्रविड़ भाषाओं की तरह तेलुगु में पश्चाश्रयी निपातों, (Enclitics/enclitic particles) का बड़ा महत्व रहता है। ये निपात ध्वन्यात्मक भी हो सकते हैं और रूपात्मक भी। शब्द के साथ जुड़कर ये शब्दार्थ को प्रभावित करते हैं। अतः इन्हें अर्थ के विशेषक (meanings modifiers) या अर्थद्योतक निपात (model particles) भी कहा

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

जाता है। तेलुगु में कर्ता शब्द के अंतिम स्वर का दीर्घीकरण कर कर्ता में विशेष अर्थ प्रतिपादित किया जाता है। इस से अवधारकता या तीव्रता बोधकता का अर्थ प्रतिपादित होता है। जैसे–

एवरु उन्नारु ? = कौन हैं ?

एवरु लेरु ? (कौन नहीं है ?)– एवरु लेरू (कोई नहीं हैं)

इसका तात्पर्य यह है कि हिन्दी के समान तेलुगु में कौन और कोई दो भिन्न सर्वनाम नहीं हैं। कौन (एवरू) शब्द के स्वर दीर्घीकरण से 'कोई' का अर्थ द्योतित किया जाता है। तेलुगु के अनुरूप दक्खिनी में कोई शब्द का अभाव है। इस में तेलुगु के अनुरूप 'कौन' शब्द में ही कुछ जोड़ कर 'कोई' का द्योतन किया जाता है। जैसे–

हिन्दी		तेलुगु		दक्खिनी
कोई नहीं है	–	एवडू लेडु	–	कोन भी नईं
कोई नहीं हैं	–	एवरू लेरु	–	,, ,,
किसी ने नहीं किया	–	एवडू चेय लेदू	–	कोन भी नईं करे
इसे कोई नहीं खाता	–	इदि एवरू तिनरु	–	ये कोन भी नईं खाते
जब मैं आई थी तब कोई नहीं था	–	नेनु वच्चिनपुडु एवरू लेरु	–	मैं आई जब कोन भी नईं

कोन-सा भी :- कोई-सा के स्थान पर, तेलुगु के प्रयोग 'एदि अयिना' (कौन-सा भी) के प्रभाव से दक्खिनी में कोन-सा का प्रयोग होता है। जैसे—

कोई-सा ले लो– एदि अयिना तीसुको– कोन-सा भी ले लो।

किसी भी शुभ कार्य में गणपति की स्तुति करते हैं।	–	ये शुभ कार्यमैना गणपतिनि स्तुतिचुतारु	–	गणपति की स्तुति कोन-सा भी शुभ कार्य में करते

(4) क्या भी : तेलुगु में 'क्या' का समानार्थक शब्द है 'एमि'। इस शब्द के अंतिम स्तर के दीर्घीकरण से अवधारक/तीव्रता बोधकता का अर्थ द्योतित होता है। जैसे—

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

तुझे क्या चाहिए ? — नीकु एमि कावालि ?
मुझे कुछ नहीं चाहिए ।— नाकु एमी वद्दु ।

इस से स्पष्ट है कि उपर्युक्त संदर्भों में तेलुगु में हिन्दी के समान क्या और कुछ के लिए दो भिन्न शब्द प्रचलित नहीं होते । एमि को एमी बनाकर 'क्या' से 'कुछ' का अर्थ बोधन किया जाता है । तेलुगु के प्रभाव से दक्खिनी में कुछ का प्रयोग नहीं होता । तेलुगु के अनुरूप क्या में 'भी' जोड़ कर कुछ का अर्थ प्रतिपादित किया जाता है । जैसे—

कुछ भी खाओ मत – एमि तिन वद्दु – कोई भी खाओ नको
मैं ने कुछ भी नहीं किया – नेनु एमी चेयलेदु – मैं क्या भी नईं करा
वहाँ क्या है ? कुछ भी नहीं । – अक्कड़ एमुंदि ? एमी लेदु – उधर क्या है ? क्या भी नईं ।

क्या तो भी : 'कुछ तो' के अर्थ को प्रकट करने के लिए तेलुगु प्रयोग के अनुरूप एमन्ना । एमि अयिना । एमैना के समानार्थक रूप 'क्या तो भी' का प्रयोग दक्खिनी में किया जाता है । जैसे—

कुछ तो देकर जाओ – एमन्ना इच्चि पो – क्या तो भी देके जा

(6) कोन तो भी : 'क्या तो भी' के अनुरूप मानवों के संदर्भ में दक्खिनी में कोई भी के अर्थ में 'कोन तो भी' का प्रयोग किया जाता है जो तेलुगु के अनुरूप बैठता है । जैसे-

वहाँ कोन है ? कोई भी नहीं है । – अक्कड एवडुन्नाडु एवडू लेडु – उधर कोन है कोन तो भी नईं ।

(7) क्या कि : तेलुगु में 'ओ' संदेहार्थक पश्चाश्रयी निपात है जिस के शब्द के साथ जुड़ जाने से उस शब्द के अर्थ में परिवर्तन होता है । जैसे–

एवडु – कोन – एवडो - पता नहीं कोन है ।
एमि – क्या – एमो - पता नहीं क्या है ।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

संदेहार्थकता को दक्खिनी में तेलुगु के तर्ज पर 'क्या' के साथ 'कि' जोड़-कर प्रकट किया जाता है। जैसे–

कौन आया ? पता नहीं	–	एवरु वच्चारु ? एमो ?	–	कोन आया ? क्या कि ?
पता नहीं, वह क्या कह रहा है।	–	वाडु एमो चेप्पुतुन्नागु	–	वो क्या कि बोल रा

(8) अपना का लोप, उसके स्थान पर संबंधित सर्वनामों के तिर्यक रूपों का प्रयोग : तेलुगु में उत्तम पुरुष तथा मध्यम पुरुष सर्वनामों के तिर्यक रूपों से निजवाचक सर्वनाम का द्योतन किया जाता है। हिन्दी के समान 'अपना' समानार्थक कोई निजवाचक सर्वनाम यहाँ प्रयुक्त नहीं होता। तेलुगु के अनुरूप दक्खिनी में संबंधित सर्वनामों के तिर्यक रूप से निजवाचकता को प्रतिपादित किया जाता है। जैसे–

मैं मेरे घर कू जा रहा। तू तेरे घर कू जा।

(9) वाक्य रचना में तेलुगु के प्रभाव से सर्वनामों के तिर्यक रूपों के प्रयोग के स्थान पर मूल रूपों का प्रयोग : उदाहरणस्वरूप,

नेनु वच्चिन तर्वात नीवु वेल्लु (ते.)
मैं आने के बाद तुम जाना (द.)
मेरे आने के बाद तुम जाना (हिं.)
नेनु माट्लाडिन तर्वात वाडु माट्लाडाडु (ते.)
मैं बोलने के बाद उनो बोला (द.)
मेरे बोलने के बाद वह बोला (हिं.)

2. सहायक क्रिया है/था का लोप

अन्य द्रविड़ भाषाओं की भाँति तेलुगु में हिन्दी के अनुरूप है/था सहा-यक क्रियाओं का प्रयोग नहीं होता। तेलुगु में क्रिया रहित वाक्य (equational sentences) प्रयुक्त होते हैं। जैसे–

14)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इदि मा इल्लु – यह मेरा घर (है)।
वीरु मा नान्नगारु – ये मेरे पिता जी (हैं)।

तेलुगु के प्रभाव से दक्खिनी में सहायक क्रियाओं (है/था) का लोप होता है। जैसे—

नेनु पोता – मैं चलतूं
नेनु वस्ता – मैं आतूं
कोड्तुन्नाडु वाड् – मार रा उनो

कुछ और उदाहरण द्रष्टव्य हैं–

एक चूहा गलीच फिरता
उनो गाँवाँ फिरता
उसके दुम में काँटा चुभता
(उनो) हज्जाम मामू को बुलाता
बुला को मेरा काँटा निकालो बोलता
× × नस्ता लेको भाग जाता।

३. होता/होना क्रिया का विशिष्ट प्रयोग

तेलुगु में तीन प्रकार के निषेधवाचक (Negatives) प्रयुक्त होते हैं। वे हैं– कादु, वद्दु, लेदु। ये क्रमशः अवुनु (हां), कावालि (चाहिए), उंदि (है) के विलोम हैं। कादु और वद्दु अव्यय हैं तो लेदु विकारी है जिस के विकारी रूप लेडु, लेरु, और लेवु बनते हैं। हिन्दी में इन तीनों निषेधवाचकों का द्योतन 'नहीं' से किया जाता है। हिन्दी का निषेधवाचक 'मत' किसी क्रिया (कार्य) के निषेध के लिए संबंद्ध क्रिया से पूर्व प्रयुक्त होता है। दक्खिनी में मत का प्रयोग नहीं होता। संभवतः तेलुगु के प्रभाव से दक्खिनी में भी तीन प्रकार के निषेधवाचकों का प्रचलन चल पड़ा है। वे क्रमशः हैं– नहीं होता, (कादु), नको (वद्दु), नईं (लेदु)। फिर इन निषेधवाचकों के लिए

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

सकारात्मकों (affirmatives) का भी प्रयोग होने लगा है। इनके सकारात्मक रूप क्रमश: बने हैं– होता, होना, है।

तेलुगु	दक्खिनी
अवुनु × कादु	होता × नहीं होता
कावालि × वद्दु	होना × नको
उंदि × लेदु	है × नइं

इस से स्पष्ट है कि दक्खिनी में चाहिए का प्रयोग नहीं होता। 'चाहिए' के लिए 'होना' तथा 'नहीं चाहिए' के लिए 'नको' का प्रयोग किया जाता है। नीचे के उदाहरणों से उपर्युक्त बातें स्पष्ट हो जाएँगी।

अब तुम दोनों क्या होते
इप्पुडु मीरद्दरु एमि अवुतारु
(अब आप आपस में एक दूसरे को क्या लगते हैं ?)
ये इसकी अम्मी है ? नहीं होती।
ईमे वीरि अम्मा ? कादु
(क्या ये इनकी माताजी हैं ? नहीं)
उनो चोर नहीं होता
वाडु दोंग कादु
(वह चोर नहीं है)
उनो बच्चा नहीं होता, आदमी रे
वाडु पिल्लवाडु कादु, पेद्दवाडु
(वह बच्चा नहीं है, आदमी है)
तुम्हारे को क्या होना ? मेरे को चाय होना
नीकु एमि कावालि ? नाकु टी कावालि
(तुम्हें क्या चाहिए) (मुझे चाय चाहिए)।
चाय नको होना कते

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

टी वद्दंट
(वह कहता है कि मुझे चाय नहीं चाहिए)
मेरे को क्या भी नको
नाकु एमीं वद्दु
(मुझे कुछ भी नहीं चाहिए)

5. लेना/ला लेना क्रिया का विशिष्ट प्रयोग

तेलुगु में 'कोनु' क्रिया मुख्य क्रिया तथा सहायक क्रिया के रूप में आती है। मुख्य क्रिया के रूप में कोनु का अर्थ खरीद (कोनुट=खरीदना) होता है। सहायक क्रिया के रूप में यह मुख्य क्रियाओं के साथ प्रयुक्त होकर उन मुख्य क्रियाओं के अर्थ में निजवाचकता (Reflexivity) का बोधन कराती है। जैसे–

नेनु बट्टलु उतिकिनानु – मैं ने कपड़े धोए
नेनु बट्टलु उतुकुकोन्नानु – मैं ने अपने कपड़े धो लिए।

तेलुगु के इस 'कोनु' के प्रभाव से दक्खिनी में ऐसे प्रयोग मिलते हैं जो मानक हिन्दी में स्वीकार्य नहीं होते। जैसे–

पकड लेके	कर लेके	शादी कर लेके
पट्टु कोनि	चेसु कोनि	पेंड्लि चेसुकोनि
(पकड़ कर)	(कर के)	(शादी कर के)
देख लेके	ला लेके आया	
चूसु कोनि	तीसु कोनि वच्चाडु	
(देख कर)	(लेकर आया)	

उनों दुबाई से खूब पैसा कमा लेके आया
वाडु दुबाई नुंचि बागा डब्बु संपादिचुकोनि वच्चाडु
(वह दुबाई से खूब पैसा कमा कर आया)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

6. कथनात्मक (quotative) के रूप में बोलके/करके का प्रयोग

तेलुगु में दो उपवाक्यों को जोड़ने के लिए 'अनि' (अनुट-कहना/बोलना अनि-कहकर/बोल कर) संयोजक (connector/conjuctive) के रूप में काम आता है। हिंदी में 'कि' संयोजक के रूप में काम करती है। दक्खिनी में तेलुगु की भाँति 'अनि' समानार्थक बोल के/करके/कहके संयोजक के रूप में प्रयुक्त होता है। संयोजक 'कि' का प्रयोग दक्खिनी में नहीं होता।

इसके अतिरिक्त हिंदी वाक्य-रचना में पहले आश्रित उपवाक्य आता है और बाद में मुख्य उपवाक्य, जब कि तेलुगु आदि द्रविड़ भाषाओं में यह क्रम उलटा होता है, अर्थात् पहले मुख्य उपवाक्य और बाद में आश्रित उपवाक्य। दक्षिण की भाषाओं की वाक्य-रचना की भाँति दक्खिनी में 'के वाक्यों' में पहले मुख्य उपवाक्य और बाद में आश्रित उपवाक्य प्रयुक्त होते हैं। जैसे–

अम्मा मेरे को जाओ बोल के बोली
अम्मा नन्नु पोम्नी चेप्पिंदि
(अम्मा ने मुझ से कहा कि तुम जाओ)
क्या भी खाओ नको बोल के बोली
एमी तिनवद्दनि चेप्पिंदि
(उसने कहा कि कुछ भी मत खाओ)
कुछ और उदाहरण इस प्रकार हैं–
बच्चा है बोलके मैं छोड़ दी
अच्छा है बोलके ले लिया
मैं जाना जरूरी बोल के गया

सरकार खुश होकर बोले जो चाहे इनाम माँगे बोल के।
तुम क्या गाली देना बोलके गाली दिए क्या ?

मैं पढ़ना बोल के पढ़ा
जितना बोलो, बोले तो बोलते
एंत माट्लाडमनि चेप्पना माट्लाडुताम

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

(अगर आप कहते हैं तो हम जितनी देर तक चाहें उतनी देर तक बोल सकते हैं। जितनी देर तक आप बोलने केलिए कहेंगे उतनी देर तक हम बोल सकते हैं)

6. प्रश्नावाचक 'क्या' के स्थान पर Do Type प्रश्न वाक्यों का प्रयोग

दक्षिण की भाषाओं में दो प्रकार के प्रश्नवाचक बनते हैं। वे हैं– who Type और Do Type तेलुगु में पहले प्रकार में एवरु (कौन), एमि (क्या), एक्कड (कहाँ), एंदुकु (क्यों) आदि का प्रयोग होता है। दूसरे प्रकार में ऐसे प्रश्नवाचक शब्दों का प्रयोग नहीं होता। वहाँ क्रिया या संज्ञा शब्दों के अंतिम स्वर का लोप करके उस के साथ–आ को पश्चाश्रयी के रूप में जोड़ा जाता है। अर्थ सूचकता की दृष्टि से ऐसे पश्चाश्रयी को प्रश्नवाचक या संशयात्मक निपात कहा जाता है। उदाहरण के लिए;

अतडु उन्नाडु–अतडु उन्नाडा ?
(वह है) (क्या वह है ?)
आमे मी कूतुरु–आमे मी कूतुरा ?
(वह आपकी लड़की है) (क्या वह आप की लड़की है ?)

उपर्युक्त प्रकार की रचनाओं के प्रभाव से दक्खिनी में निम्नलिखित वाक्य प्रयोग मिलते हैं जो मानक हिन्दी के लिए अपरिचित हैं।–

शाम को कपड़े लाते ?
सायंत्रम् बट्टलु तेस्तावा ?
(क्या शाम को कपड़े लाओगे ?)
रात कू घर कू आते ?
रात्रिकि इंटिकि वस्तावा ?
(क्या रात को घर आओगे ?)
खाना खाते ?
अन्नम् तिंटावा ?

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

(क्या खाना खाओगे ?)
ये इस की अम्मी हैं
ईमे वील्ला अम्मा ?
(क्या ये इस की मां हैं ?)
मेरे को साथ ले के जाते ?
नन्नु वेंट तीसु कोनि पोतावा ?
(क्या मुझे साथ लेकर जाओगे ?)

7. कू–कने का प्रयोग

कू : अन्य द्रविड़ भाषाओं की भाँति तेलुगु में वाक्य स्तर पर स्थान वाचक और समयवाचक पूरकों के साथ कु और कि विभक्ति प्रत्यय जुड़ता है। जैसे:-

नेनु बजारु कु वेल्लानु–मैं बाजार (को) गया
वाडु अइंदु गंटल कि, तिरिगि वच्चाडु-वह पाँच बजे (को) लौट आया

इस सादृश्यता के आधार पर दक्खिनी में निम्नलिखित संरचनाएं प्रचलित हैं:-

उनों घर कू जाता है। कांकू गया रे ?
मैं पाँच बजे कू आया। इधर कू आना
बालम्मा यहाँ कू आये दस रोजाँ हो रा

कने:- तेलुगु में 'के पास' के अर्थ में वद्दु। काड परप्रत्ययों का प्रयोग किया जाता है। जैसे; नाकाड। ना वद्द डब्बु लेदु–मेरे पास पैसा नहीं है। तेलुगु का 'काड' ही दक्खिनी में कने (काड+ए-काडे–कने) के रूप में परिवर्तित हो कर प्रयुक्त होता हैं।[2] (तेलुगु में 'ए' अवधारक है। काडे का तात्पर्य है पास ही। दक्खिनी में 'के पास' के स्थान पर–कने का प्रयोग होता है। जैसे:-

इन कने फूलाँ हैं देखो
मेरे कने आओ नको
मेरे बावा गुडिकने काम करते (गुडि–मंदिर)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

8. संबंधवाचक रचना (relative construction) 'जो.. वह' का लोप और 'सो' का प्रयोग

द्रविड़ भाषाओं में हिन्दी के समान संबंधवाचक सर्वनामों (जो..वह) का प्रयोग नहीं होता। इन भाषाओं में तेलुगु में संबंधित क्रिया रूप के साथ 'न' या 'चूडु' रूपों का प्रयोग होता है। द्रविड़ भाषाओं में प्रयुक्त ऐसे रूपों को दो नामों से भाषाशास्त्रियों ने अभिहित किया है। जैसे संयोजक संबंधवाचक (confirmative relatives)[3] और संबंधवाचक (affixal-relatives)[4] तेलुगु में प्रयुक्त 'न' संबंधवाचक के लिए दक्खिनी में 'सो' तथा 'चूडु' के लिए इसका समानार्थक देखो का प्रयोग होने लगा है। उदाहरण—

निन्न नीवु चेप्पिन कथा बागुंदि (ते.)
कस तुव बोले सो कहानी अच्छी हे (द.)
(कल तुमने जो कहानी सुनाई थी सो अच्छी थी)
निन्न मी इंटिकि वच्चाडु चूडु आयन मा मामगारु (ते.)
कल तुम्हारे घर कू आया देखो वह मेरे मामू है (हिं.)
(कल आपके घर जो आए थे न वे मेरे ससुर हैं)

उक्त प्रकार की तेलुगु रचनाओं के प्रभाव से दक्खिनी में प्रचलित निम्नलिखित रचनाएँ द्रष्टव्य हैं:—

आप बोले सो बात
कोट पैंने सो आदमी
यह देखे सोई फिल्म है
आए सो आदमी
इसमें रखे सो किताब नईं मिल रही
फोन में बोले सो बाताँ याद रखो।

9. 'कते' का प्रयोग

तेलुगु में 'अट' विशेष प्रकार का निपात है जो वक्ता के कथन के बाद प्रयोग में लाया जाता है। जैसे, 'वाडु रेपु वस्ताडट, इप्पुडु राडट'।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

इस वाक्य के भाव को हिन्दी में इस प्रकार व्यक्त करना पड़ता है– (1) वह कहता है कि मैं कल आऊँगा, अब नहीं या (2) उसका कहना है कि वह कल आएगा, अब नहीं आता या (3) ऐसा है कि बात यों है कि/वह कल आएगा, अब नहीं आता। इस द्राविड़ प्राणायाम से बचने केलिए द्रविड़ भाषाओं की रचना के अनुरूप दक्खिनी ने 'अट' के तर्ज पर 'कते' के प्रयोग को अपनाया और वाक्य को सरल बनाया। ऊपर के वाक्य को दक्खिनी में यों कहा जाएगा- उनों कल आते कते, अब आते न कते। इस रचना से संबंधित कुछ और उदाहरण नीचे दिए गए हैं:–

एक राजा था कते।
वो लोगाँ शाम को आरे कते।
उनो अब खाते नईं कते।
कब खाते कते ? क्या कि साब।

10. क्रिया पुनरुक्ति और क्रिया द्विरुक्ति

पुनरुक्तिः- मानक हिन्दी में क्रिया की पुनरुक्ति से बचा जाता है। उस के स्थान 'पर कि नहीं/या नहीं' का प्रयोग कर काम चलाया जाता है। जैसे, तुम ने खाया कि नहीं। तुम ने खाया या नहीं। लेकिन तेलुगु की भांति दक्खिनी में क्रिया की पुनरुक्ति होती है। जैसे,

तुम खाए नईं खाए
उनों आये नई आये
तुम जाते नईं जाते।

द्विरुक्तिः- तेलुगु के प्रयोग के आधार पर दक्खिनी में क्रिया की द्विरुक्ति की जाती है। मानक हिन्दी में ऐसे प्रयोग नहीं मिलते। जैसे,

कर-करः- जंग कर कर कनौज को गया
अल सुबह कूच कर कर एक रात एक दिन में दाखिल हुआ

गिरा-गिरा कोः- बम्मां गिरा गिरा को
चला-चला कोः- तोपां चला चला को

15)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

11. अन्य विशिष्ट संरचनागत प्रयोग

ऐसे आठ प्रकार के विशिष्ट प्रयोग संकलित सामग्री से प्राप्त हुए हैं। कोष्ठकों में तेलुगु के उदाहरण दिए गए हैं जिन से ये प्रभावित हैं।

(1) 'से' विभक्ति के स्थान पर 'को' का प्रयोग, जैसे, क्यों रे मैं आप को बोली ? (नीकू चेप्पाना) नंदराजा कट्टी गोपाल को पूछा।

(2) 'तुम को' के स्थान पर 'तुमना' का प्रयोग, जैसे, खुदा कहा मुझे बूझे तुमना कौन पैदा किया (निन्नु)

(3) 'आता' का प्रयोग, जैसे,

मेरे को तिरना आता (नाकु ईदटम् वस्तुंदि) मेरे को गाने को आता (नाकु पाडटम् वस्तुंदि)

(4) एक और के स्थान पर 'और एक' का प्रयोग, जैसे, मेरा सरीका दीवाना भाई और एक भी है (इंकोकरू)

(5) तेलुगु के प्रयोग 'अंदुवलन' के आधार पर 'उस के लिए' का प्रयोग

(6) तेलुगु का प्रयोग 'अय्यो पापम्' के आधार पर 'पाप बिचारा' का प्रयोग

(7) 'कोई बात नहीं है' के अर्थ में तेलुगु को भाँति 'परवा नहीं' (परवा-लेदु) का प्रयोग

(8) ध्वन्यात्मक शब्द (Echo words) का निर्माण जैसे, बाजा-गीजा गानाँ-गीनां, रोटी-गीटी, काम-गीम, खाना-गीना, धंधा-गिंदा (तेलुगु में प्रति ध्वनि शब्दों में दूसरा शब्द हमेशा 'गी' से ही प्रारंभ होता है–अन्नम-गिन्नम्, पालु-गीलु आदि)

12. शब्द स्तर पर प्रतिप्रभाव (counter influences)

ये ऐसे शब्द हैं जो अरबी-फ़ारसी के प्रभाव वे तेलुगु में आए हैं। लेकिन तेलुगु ने अपनी प्रकृति के अनुसार उन्हें अपनाया। फिर इन तेलुगु शब्दों के प्रभाव से दक्खिनी में शब्द आए। कुछ उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

बँटवारा–वटवाडा–वटवाडा

बारूद वगैरा कते वटवाडा कराया ।

तनकीह्-तनकी-तनखी

हिसाब तनखी करना हुआ

दस्तखत-दस्तूरी-दस्तूरी

यह रसीद अपने दस्तूरी से इच

लूट-लूटी-लूटी

ओहदा-होदा-होदा

तरबियत-तरवीदु-तरवीद आदि कुछ अन्य उदाहरण भी हैं ।

13. मुहावरे

कुछ मुहावरे तेलुगु से लिए गए । इन का प्रयोग मानक हिन्दी में नहीं मिलता । जैसे,

पेट चीरो तो अलीफ़ नहीं

(कड़ुपु कोस्ते अक्षरम रादु)

झूठे हाथ से कौर को नई मारने का

(एंगिलि चेत्तो काकिन अर्दलिचडु)

इकट्ठे किए गए डेटा में से उपर्युक्त प्रकार के प्रभाव की दिशाएँ प्राप्त हुईं । विस्तृत अध्ययन से दक्खिनी पर तेलुगु । दक्षिणी भाषाओं के प्रभाव की अन्य स्थितियाँ प्राप्त हो सकती हैं ।

उपर्युक्त विवेचन से यह स्वीकार करने में कोई संकोच नहीं होना चाहिए कि दक्खिनी की आत्मा (व्याकरण के अधिकांश तत्व) द्रविड़ हैं, भले ही उसका शरीर (शब्दावली आदि अन्य तत्व) आर्य हो, दक्खिनी की जड़ें द्रविड़ भाषाओं से सिंचित है, भले ही ऊपर का पेड़ हिंदी लगे । यह स्थिति ऐसी है मानों द्रविड़ व्याकरण का हिंदी में (परकाया) प्रवेश हुआ हो । दो भिन्न-भिन्न भाषा-परिवारों की भाषाओं के इस प्रकार के विलयीकरण (fussion) का विश्व में दक्खिनी ही एकमात्र नमूना नहीं है । ऐसे और भी उदाहरण

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

मिलते हैं। सिंहली को द्रविड़ और आर्य भाषाओं के विलयीकरण के एक और प्रबल उदाहरण के रूप में लिया जा सकता है। इस संबंध में एक उद्धरण 25-4-89 के 'The Hindu' से प्रस्तुत है–

"An eminent authority the late Mudaliyar W. F. Gunawardhane said that Sinhalese was essentially a Dravidian language. Its evolution seemed to have been based on Tamil. Sinhalese is the child of Pali and Sanskrit but with regard to its physical structure it is essentially the language. of Tamil." Quoted by Nagarajan in his article on The fussion: a phenomenon.

अंत में अगर यह कहा जाए कि दक्खिनी एक ऐसा फूल है जिस के रंग-रूप का संबंध हिंदी-उर्दू से है लेकिन उस की गंध द्राविड़ है तो सटीक होगा।

जनमानस में बोलचाल में व्यवहृत दक्खिनी की खुशबू की पूरी लज्ज़त आप तभी पा सकते हैं जब कि आप को द्रविड़ भाषाओं की संरचना का भी ज्ञान हो। आर्यावर्त एवं दक्षिण पथ के दो भिन्न परिवारों की भाषाओं के संगम से बनी ऐसी भाषा को, उस भाषा को ज़माने से इस्तेमाल करते आ रहे उन तमाम दक्षिण लोगों की मातृभाषाओं को द्रविड़ भाषाओं के नज़रिए से भी परखने की जरूरत है।

पाद टिप्पणियाँ

(1) तेलुगु में प्रयुक्त पश्चाश्रयी निपातों की विस्तृत चर्चा लेखक के 'तेलुगु और हिंदी के पश्चाश्रयी निपातों का व्यतिरेकी विश्लेषण' शोधपत्र में है। (प्रकाश्य)

(2) डॉ. वी. स्वराज्यलक्ष्मी का मंत भी यही है कि दक्खिनी के 'कोई' का स्रोत तेलुगु का 'काड' है। देखिए उनकी है पुस्तक Influence of Urdu on Telugu (A Study of Bilingualism) पृष्ठ 127

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

(3,4) प्रो. ई. अण्गमलै ने इन्हें Confirmative ralatives कहा है तो प्रो. लक्ष्मीबाई ने affixal relatives firm, विशेष जानकारी के लिए देखिए हरवीर अरोरा का शोधग्रंथ 'some aspects of Dakhini Hindi–Urdu syntax with special reference to convergence पृष्ठ 313-355

संदर्भ-सूची

सैयदा जाफर और ओम प्रकाश निर्मल (सं.) : 1980 चन्दरवदन व महयार; आंध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी, हैदराबाद

श्रीराम शर्मा : 1954. दक्खिनी का गद्य और पद्य; हिन्दी प्रचार सभा, हैदराबाद

श्रीराम शर्मा : 1964. दक्खिनी हिन्दी का उद्भव और विकास; हिन्दी साहित्य सम्मेलन

शारदा (संपा) : 1979. पुरुषोत्तम कवि के हिन्दुस्तानी नाटक; दक्षिणांचल साहित्य समिति, हैदराबाद

वी. रा. जगन्नाथन : 1981. प्रयोग और प्रयोग; आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी प्रेस, नई दिल्ली

भोलानाथ तिवारी : भारतीय भाषा चिंतन–कुछ नए आयाम; भारतीय भाषा परिषद्, कलकत्ता

विजयराघव रेड्डी : 1986. व्यतिरेकी भाषाविज्ञान; विनोद पुस्तक मंदिर, आगरा

विजयराघव रेड्डी : 1987. हिन्दी का भाषिक परिवेश : उसके विविध रूप और नाम; विवरण पत्रिका, हैदराबाद

Hartman, R. K. K. : 1980. Contrastive Textology; Julius Groos Vertag

SwarajyaLakshmi V. S. : 1984. Influence of Urdu on Telugu (A study of Bilingualism); Dept. of Linguistics O. U. Hyderabad

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Arora, Harbir : 1986. Some aspects of Dakhini Hindi-Urdu syntax with special reference on convergence; Ph. D. Thesis submitted to the University of Delhi (Unpublished)

Kachru, Yamuna : 1980 The Syntax of Dakhini : A study in Language variation and Language change, (Memeo)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

हिन्दी और दक्खिनी की पद संरचना : एक तुलनात्मक अनुशीलन

प्रो. वै. वेंकटरमणा राव

0 आचार्य श्रीराम शर्मा द्वारा संपादित 'दक्खिनी का पद्य और गद्य' संग्रह के लिए अपनी 'सम्मत्ति' लिखते हुए डॉ. वासुदेवशरण अग्रवाल ने एक मूल्यवान बात कही है– "जिस प्रकार अपभ्रंश में आने से हिन्दो की ऐतिहासिक परंपरा कई शताब्दियों पीछे हट गई उसी प्रकार दक्खिनी के गद्य ओर पद्य की नई सामग्री देश और काल में हिन्दी की गंभीरता का विस्तार करती है।" इसी प्रकार से मिलनेवाली बात डॉ. कैलाशचन्द्र भाटिया ने भी की है– 'यह संयोग ही है कि चौदहवीं शताब्दी में अमीर खुसरो और कलंदर जैसे सहिष्णु संत जिस भाषा का प्रयोग उत्तर भारत में कर रहे थे किन्हीं कारणों से उत्तर में अधिक विकसित न होकर सुदूर दक्षिण में विकसित हुई और फिर से उत्तर में लौटकर वर्तमान हिन्दी के स्वरूप को स्थिर करने में सहायक सिद्ध हुई।' इसी क्रम में डॉ. सुनीतिकुमार चटर्जी का कथन भी महत्वपूर्ण सिद्ध होता है। उन्होंने 'भारतीय आर्य भाषा और हिन्दी' (पृ. 211) में कहा है कि 'व्रजभाषा के स्थान पर साहित्य के लिए विशेषकर हिन्दी या हिन्दुस्तानी के प्रयोग का आदर्श उत्तरी भारत के समक्ष सर्वप्रथम 'दक्कन' वालों ने ही रखा है।' इस प्रकार भाषा और साहित्य के लिए 'दक्खिनी' हिन्दी का एक पथ प्रदर्शन और रूप निर्णायक वन जाती है।

दक्खिनी का विशाल साहित्य उपलब्ध होता है। इस साहित्य के अनुशीलन से यह स्पष्ट होता है कि दक्षिण में प्रमुखतः हैदराबाद केन्द्र से

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दक्खिनी हिन्दी का मूल्यवान साहित्य रचित हुआ है। इसका आरंभिक रूप 14 वीं शती से उभरता है और 17 वीं शती तक एक अनवरत सृजन की परंपरा को लेकर चलता है। 17 वीं शती के बाद लगभग 70 वर्षों का अंतराल मिलता है। पर 16 वीं शती में नाटक साहित्य के क्षेत्र में (उदाहरण के रूप में श्री नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि के हिन्दी नाटक) नई दिशा लेकर दक्खिनी साहित्य सृजन का आरंभ होता है। बीसवीं शती में साहित्य की अन्य विधाओं में रचनाएँ मिल रही हैं। कहानी और उपन्यास के क्षेत्र में इस की नई रूप-रेखाएँ देखी जा सकती हैं। इस इतिहास का सर्वेक्षण प्रस्तुत प्रपत्र का क्षेत्र नहीं है। दक्खिनी भाषा के अनुशीलन से कुछ महत्वपूर्ण बातें अवश्य उभरती हैं। इन के आधार पर दक्खिनी हिन्दी के संरचनात्मक रूपों का हिन्दी संरचनाओं से संबंध निरूपित होता है। भाषा के संरचनात्मक सांचे खड़ीबोली के साथ अधिक जुड़ते हैं। वाक्य के घटकों में पदक्रम, लिंग-वचन समन्वय आदि तो खड़ीबोली रूपों के साथ ही मेल खाते हैं। इसकी पुष्टि कुछ उदाहरणों से हो जाती है।

(क) पद्य

मुहब्बत लगाने जो लगती है साफ
न कर यार का वादा हर्गिज़ खिलाफ
जो इसी बात पर वो चंचल छन्द भरी
जो रुख यार के घर को जाने करो
यकायक सबा का उजाला हुआ
उसे वो उजाला सा जाला हुआ। (तूतीनामा, वजही पृ. 63)
थी रानी शाह की सतवन्ती नांव
चन्द्र सुरज कधीं देखी न छांव
कवीं दरपन में जो मुख देखे जाय
देखे अपने नयन की पुतलियां सरमाय। (फूलबन, इब्न निशाती पृष्ठ. 271)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अयी उसकी बेटी थी साहबे जमाल
अथा नाम उसका सो चन्दा कमाल
था उस बादशाही में गवाल एक
इस्म उसका लोरक अथा नाम नेक।
(मसनवी गवासा दकनी, गवासी, पृष्ठ 256)

गद्य : नक्ल। एक शहर था। शहर का नाउ सीस्तान। इस सीस्तान के बादशाह का नाउ अक्ल। दीन व दुनिया का तमाम काम उसते चलता उसके हुक्म बाज जरा कई नइं हिलता। इसके फरमाये पर जिने चले, हर जो जहान में वे भले। (सबरस, वजही, पृ. 806)।

उक्त उदाहरणों से यह देखा जा सकता है कि दक्खिनी हिन्दी साहित्य में प्रयुक्त भाषा और आधुनिक हिन्दी की प्रकृति में समानता है। चाहे इस पर अन्य हिन्दी बोलियों का प्रभाव क्यों न रहा हो। हाँ, फिर भी इस की मूल आत्मा खड़ीबोली की प्रकृति ही है। इस प्रकृवि का एक आंशिक निरूपण दक्खिनी हिन्दी की पद-रचना प्रकृति के आधार पर करना ही इस प्रपत्र का लक्ष्य है। यहाँ मै यह दावा नहीं कर रहा हूँ कि उससे पहले इस पर कुछ नहीं कहा गया है। फिर भी यह पुनश्चरण वस्तुस्थिति की स्वीकृति का है और आगे हिन्दी भाषा और साहित्य से संबंधित कार्यों की प्रेरणा के लिए आंशिक योगदान है।

यहाँ एक बात स्पष्ट कर देना समीचीन ही होगा - वह दक्खिनी हिन्दी नाम को लेकर। इस विषय को लेकर अनेक चर्चाएँ उभरी हैं। जिस प्रकार हिन्दुस्तानी हिन्दी और उर्दू रूपों में उभर कर आई है, उसी प्रकार दक्खिनी भी दक्खिनी हिन्दी और दक्खिनी उर्दू के नामों से उभर कर प्रचार

सूचना : उदाहरणों के साथ दी गई पृष्ठ संख्याएँ दक्खिनी गद्य और पद्य की है।

16)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

में आई है। यह कोई अशुभ या बुरी बात नहीं है। भाषा के विकास में दो भिन्न शैलियों के विकास की ओर यह संकेत करता है। उसी रूप में उसे स्वीकार करके उन शैलियों को स्फूर्ति प्रदान करना समुचित ही होगा। शायद इस प्रकार की मानसिकता को मान्यता देने में सहमत न हो सकने के कारण प्रो. श्रीराम शर्मा ने इस संबंध में एक वक्तव्य दिया था- दक्खिनी के साथ हिन्दी शब्द का प्रयोग करते हैं किन्तु दक्खिनी को हिन्दी का विशेष रूप बताना उचित नहीं। हम लोग यदि ब्रज हिन्दी या अवधी हिन्दी नहीं कहते हैं तो दक्खिनी हिन्दी कहने की क्या आवश्यकता है ? (दक्खिनी का पद्य और गद्य, निवेदन, पृष्ठ 33) प्रो. शर्मा जी का यह मत इसलिए स्वीकार्य नहीं हो सकता क्योंकि हिन्दी के साथ पूर्वी हिन्दी, और पश्चिमी हिन्दी नाम बहुप्रचलित है। ग्रियर्सन, डॉ. धीरेन्द्र वर्मा आदि ने इन का प्रयोग किया है। डॉ. हरदेव बाहरी ने पूर्वी हिन्दी, बिहारी हिन्दी, राजस्थानी हिन्दी, पहाड़ी हिन्दी कहकर दिशावाची और स्थानवाची विशेषणों का प्रयोग भी किया ही है। (हिन्दी उद्भव, विकास और रूप, पृष्ठ 82) प्रो. प्रदीपचंद ने तो दक्खिनी हिन्दी को हिन्दी की बोली के रूप में स्वीकार किया है। (हिन्दी और उसकी बोलियाँ) ऐसी स्थिति में यह कहना भी कोई समस्या नहीं उत्पन्न कर पाती कि दक्खिनी भाषा का रूप दक्षिणांचलीय अभिसरणात्मक प्रभावों से युक्त होकर अपना अस्तित्व रख रहा है। उसने अपने विकास में 'दक्खिनी हिन्दी' और 'दक्खिनी उर्दू' दो शैलियाँ प्राप्त की हैं।

3. पद-रचना व्यवस्था के अंतर्गत संज्ञा, सर्वनाम, क्रिया, अव्यय आदि समस्त पदों की रचना का समावेश होता है। इन में लिंग, वचन, कारक, काल आदि के साथ पद संरचना व्यवस्था एक रूप धारण कर लेती है। इस प्रपत्र में केवल संज्ञा शब्द के लिंग, वचन और कारक रूपों में उभरनेवाले रूपों का एक सामान्य विवेचन किया गया है जिससे हिन्दी और दक्खिनी रूपों में साम्य और वैषम्य का निरूपण हो जाता है। इस तुलनात्मक अनुशीलन का लक्ष्य मात्र वस्तु स्थितियों का पुनश्चरण है और इस दिशा में सम्यक शोध की संभावनाओं का उद्घाटन है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

4. संज्ञा का पद रूप में रूपांतर वचन, लिंग और कारक की संभावनाओं के अनुरूप होता है। इन तीनों के सूचक पदांश तत्व पद-रचना के सहायक तत्व बनते हैं जिससे सम्यक संप्रेषण संभव होता है। इन में विकासगत स्वरूपों के आधार पर ही प्रायः भाषा की विभिन्न ऐतिहासिक स्थितियों और विभिन्न रूपों के बीच संबंधों का रेखांकन होता है। भाषा में संज्ञा शब्दों को दो वर्गों में रखा जा सकता है– (1) स्वरांत और (2) व्यंजनांत। इन के दो रूप वचन के आधार पर और दो रूप लिंग के आधार पर घटित होते हैं। यह स्थिति आधुनिक हिन्दी और दक्खिनी में स्पष्ट दिखाई देती है। इन चारों को प्रभावित करनेवाला एक और तत्व है कारक। इन सब के समावेश से भाषा-विशेष में संज्ञा की रूप-रचना की स्थितियाँ बनती हैं। तभी संज्ञा शब्द का पद रूप घटित होता है। इन में दृष्टिगोचर होनेवाले अंतर भाषा या बोली के अंतरों को भी उपस्थित करने वाले होते हैं। इन के तुलनात्मक अनुशीलन से दो घटकों के बीच अर्थात प्रस्तुत सदंर्भ में हिन्दी और दक्खिनी का सामीप्य और उनमें मिलने वाले भेदक तत्वों से युक्त विशिष्टताएँ स्पष्ट होती हैं।

5. एक वचन और बहुवचन रूप : ऊपर कहा जा चुका है कि प्रकृति का आधार उनकी स्वरांतता और व्यंजनांतता है। उस के अनुसार ही पद-रूप-परिवर्त देखे जा सकते हैं। ह्रस्व अकारांत संज्ञा शब्दों में अंत्य स्वर लोप हिन्दी और दक्खिनी में समान रूप से पाया जाता है। इसी लिए इस प्रकार की संज्ञाओं को व्यंजनांत संज्ञाएँ ही मान सकते हैं। यह स्थिति पुल्लिग और स्त्रीलिंग संज्ञाओं में भी समान है। उदाहरण के लिए; घर, काम, राम, दिन आदि शब्दों को लिया जा सकता है। ये पुल्लिग संज्ञाएँ हैं। बात, किताब, बहिन आदि संज्ञाएँ स्त्रीलिंग में प्रयुक्त होती हैं।

इन के बहुवचन रूपों में हिन्दी और दक्खिनी में अंतर मिलता है। हिन्दी में एक वचन में कोई प्रत्यय नहीं लगता। भाषावैज्ञानिक शब्दावली में कहा जाए तो इस स्थिति में शून्य प्रत्यय हैं। किन्तु बहुवचन में जहाँ पुल्लिग

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

शब्दों में कोई विकास या परिवर्तन नहीं है वहाँ स्त्रीलिंग शब्दों में प्रत्यय के कारण रूप-परिवर्तन मिलता है। ये भेद हिन्दी और दक्खिनी में इस प्रकार मिलते हैं–

हिन्दी	दक्खिनी
–एं : बातें, किताबें	-आँ (स्त्रीलिंग और पुंल्लिग संज्ञा शब्दों के साथ समान रूप से यह प्रत्यय लगता है)
	घराँ, कामाँ, लोगाँ (पुं) बाताँ, बहिनाँ, किताबाँ (स्त्री.)
	–एँ का प्रयोग भी बहुत कम मात्रा में मिलता है, –बातें, किताबें

–आ (दीर्घ आ) से अंत होनेवाले शब्दों की स्थिति दक्खिनी में हिन्दी से भिन्न दिखाई देती है। हिन्दी में जहाँ पुंल्लिग और स्त्रीलिंग संज्ञाओं में भिन्न परिणतियाँ मिलती हैं वहाँ दक्खिनी में एक प्रकार से एकरूपता प्राप्त होती है। हिन्दी में 'आ'कारान्त शब्द -ए प्रत्यय के साथ बहुवचन रूप धारण करते हैं जैसे लड़का-लड़के, कौआ-कौए आदि। स्त्रीलिंग में -एँ प्रत्यय का प्रयोग है— लताएँ, बाधाएँ, । दक्खिनी में इस के तीन रूप मिलते हैं।–

1) अंत्य 'आ' के नासिक्यीकरण से: जैसे बच्चाँ, लताँ, बाधाँ।

2) अंत्य 'आ' का लोप और उस के स्थान पर–या का योग : यह स्थिति शब्दांत में र, ल, व, की उपस्थिति में मिलता है।

नखरा-नखराँ   भला-भल्याँ

3) हिन्दी के अनुरूप–ए प्रत्यय का प्रयोग : कपड़े, तारे आदि में। प्रथम दो प्रयोग दक्खिनी में विशिष्ट हैं तो तृतीय का प्रयोग हिन्दी की प्रकृति के अनुसरण में किया गया हैं।

इकारांत संज्ञा शब्दों में हिन्दी के नियमों का अतिक्रमण दक्खिनी में मिलता है। हिन्दी संज्ञा का लिंग एकवचन और बहुवचन रूपों के निर्धारण में

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

महत्व रखता है। किन्तु दक्खिनी में यह भेद महत्व का नहीं रह जाता है। हिन्दी में पति, ऋषि, हाथी जैसे पुल्लिग संज्ञाओं के बहुवचन रूप अपरिवर्तित या शून्य प्रत्यय युक्त हैं। किन्तु दक्खिनी में इस की चार स्थितियाँ मिलती हैं जिनमें संज्ञा का लिंग किसी प्रकार का भेदक नहीं होता है।

1) –यां प्रत्यय का योग : पति-पतियाँ, नीति-नीतियां।

2) अंत्य ई का लोंप और यां का योग–भाई-भायां।

3) अंत्य ई का लोप और–इयां का योग। यह हिन्दी के समान है– सखी-सखियाँ, मछली–मछलियाँ।

अंत्य ई का लोप और-या का योग–(यह न, र, ल, व, से अंत होने वाली संज्ञाओं में मिलता है।)–दीवानी–दीवान्यां, परी–पर्यां' कली–कल्यां, गवी–गव्यां।

उकारांत संज्ञाओं में हिन्दी रूपों के साथ निम्न विशेष रूप मिलते हैं– वाँ

1) जंतु-जंतुवां, अंजु–अंजुवां

2) ऊ का लोप और-आ का योग—गुरू -गुरां।

6. एकवचन और बहुवचन विकारी रूप: संज्ञागत विकारी रूप कारकीय स्थितियों में प्राप्त होते हैं। जो परिवर्तन बहुवचन मूल रूपों में प्राप्त होते हैं, उनसे भिन्न रूप हिन्दी से दक्खिनी में व्याप्त हैं। यह व्यवस्था बहुत दूर तक हिन्दी व्यवस्था से तुल्य है। संज्ञाओं में मिलने वाले एक वचन प्रयोग की स्थितियों के कुछ उदाहरण इस प्रकार हैं—

(1) शहर को, जग में, (2) बेटे के, झगड़े में (3) पानी ते, बिल्ली कुं (4) गुरु में।

बहुवचन में हिन्दी में -ओं तिर्यक प्रत्यय सभी स्थितियों में समान रूप से मिलता है जसें—

घरों में, लड़कियों में, हाथियों में, मर्दों में, गुरुओं पर।

किंतु दक्खिनी के रूप कुछ भिन्न प्रकार से भी मिलते हैं।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

(क) व्यंजनांत संज्ञाओं के साथ -'आ' तिर्यक प्रत्यय के रूप में भी प्रयुक्त होता है–लोकां को, यारां सू, फूलां में, वातां से।
इस के साथ साथ पुत्रों कु, ग्रंथों में, बातों से आदि रूप भी प्रयुक्त होते हैं जो हिन्दी के समान हैं।

(ख) स्वरांत संज्ञाओं में भी दक्खिनी के बहुवचन रूप को ही विकारी रूप में पाया जाता है जैसे–राजा-राजाँ कुं।

इस में एक और विशिष्ट रूप भी मिलता है जिसमें अंत्य 'आ' का लोप और –यां का योग होता है। जैसे
परदा-परद्यां कूं, बंदरा-बंद्र्यां कूं, भला-भल्यां कूं।

इकारांत संज्ञाओं में भी हिन्दी के रूप और दक्खिनी के विशिष्ट रूप दोनों का प्रयोग दक्खिनी में मिलता है।

(क) -इयां रूप जैसे मोतियां कूं
सहेली-सहेलियां सुं।

(ख)-ई का लोप और -यां का योग भी दक्खिनी में प्राप्त होता है-
गुडी-गुड्यां का, अंगुली-अंगुल्यां में, खुशी-खुश्यां सुं।

उक्त विवेचन के आधार पर यह स्पष्ट होता है कि दक्खिनी एक ओर अपने स्वरूप को हिन्दी के साथ समरूप में निभाती चलती है तो दूसरी ओर वचन और कारक रूपों में प्रांतीय प्रभाव को ग्रहण कर एकरूपता लाने के प्रयासों में भी सफल होती जाती है। वचन और कारक रूपों में यह समानता या एकरूपता तेलुगु के प्रभाव से मानी जा सकती है। तेलुगु में बहुवचन प्रत्यय 'लु' है और उसका कारकीय रूप 'ल' है (लु–उ+अ=ल)। इसी के समांतर में एक सरल एवं एकरूपात्मक संरचना विधान को रूपायित करने की प्रक्रिया में उचित गमन दक्खिनी की विशिष्टता है। दक्खिनी और हिन्दी के समग्र तुलनात्मक अनुशीलन से अनेक ऐसी विशेषताओं का उद्‌घाटन हो सकता है जो एक भाषा के सर्वभारतीय रूपांतरण की परिणति और विकास की अनेक स्थितियों को स्पष्ट करती हैं।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

'मसनवी कदमराव पदमराव' की भाषा

डॉ. वी. पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर

'मसनवी कदमराव पदमराव' की आधार भाषा खड़ीबोली है, जिसमें हरियाणवी, पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी, व्रज, अवधी, राजस्थानी आदि भाषाओं के तत्व भी विद्यमान हैं। साथ ही, द्रविड़ भाषा तेलुगु का प्रभाव भी देखा जा सकता है। दक्षिण के बीदर (संप्रति यह कर्णाटक राज्य का इलाका है) में लिखित इस काव्य की भाषा को दक्खिनी नाम से अभिहित करना अनुचित नहीं है। खड़ीबोली के इस रूप को दक्षिण के भू-भागों में प्रचलित होने के कारण ही दक्खिनी नाम दिया गया। इस दृष्टि से विचार किया जाए तो दक्खिनी के ज्ञात उपलब्ध साहित्यिक ग्रंथों में प्रस्तुत काव्य-कृति को प्रथम होने का गौरव भी प्राप्त है। इस काव्य के रचयिता फखरूदीन निज़ामी अथवा निज़ामी दकनी है। इसका रचनाकाळ सन् 1421 माना गया है।

फ़ारसी लिपि में लिखित होने के कारण इस काव्य को उर्दू का प्रथम ग्रंथ घोषित किया गया है। परंतु इसकी भाषा का विश्लेषण करने पर यह सिद्ध होता है कि इस ग्रंथ की भाषा का उर्दू से दूर का भी संबंध नहीं है। इसमें कुल बारह हज़ार शब्द प्रयुक्त हुए हैं जिनमें दस हज़ार शब्द संस्कृत मूलक हैं, शेष शब्दों में लगभग डेढ़ सौ शब्द अरबी-फारसी के हैं। ये शब्द भी हिन्दी के ढांचे में ढले हुए देखे जाते हैं।

इस मसनवी में कई भाषाओं और बोलियों के तत्व मिलते हैं जिनका विवेचन निम्न प्रकार से किया गया है :

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

1. हरियाणवी भाषा

यद्यपि दक्खिनी में अनेक भाषाओं के शब्द घुलमिल गए हैं तथापि हरियाणवी से उसके संबंध को स्पष्ट करने वाले अनेक तत्त्व विद्यमान हैं। 'मसनवी कदमराव पदमराव' में आए हरियाणवी शब्द हैं—

कधीं (कभी), गांडा (गन्ने का टुकड़ा), घाल (डाल), तत्ता (गरम), थांबा (स्तम्भ), पत्याना (विश्वास करना), बोल्या (बोला), भौंदना (चकित रहना), सवाए (बहुत अधिक)। इस प्रकार के अनेक शब्द उद्धृत किए जा सकते हैं, जिससे यह बात स्वीकार करनी पड़ती है कि प्रस्तुत मसनवी की भाषा मुख्य रूप से दिल्ली और हरियाणा की भाषा खड़ीबोली और हरियाणवी है।

क्रिया के साधारण रूप में अनुनासिक की प्रबल प्रवृत्ति हरियाणवी से स्वीकृत जान पड़ती है। जैसे—

बोलनां, खानां, जीवनां, पत्यावनां, करनां आदि।

भूतकाल बनाने की प्रवृत्ति में हरियाणवी और दक्खिनी में साम्य है। साधारणतः हिन्दी में मूलधातु के साथ 'आ' के स्थान पर 'या' प्रत्यय जोड़कर भूतकालीन रूप बनाया जाता है। यथा—

लेख्या, रच्या, बोल्या, देख्या मार्‌या आदि अनेक रूप इस मसनवी में उपलब्ध हैं,

इसमें प्रयुक्त सर्वनाम भी हरियाणा के जैसे हैं। यथा—

हमन (हम), तुमन, तूं, अपस (अपना) आदि। धातु में 'न', 'अन', आदि जोड़कर बनाए रूप, जैसे-देखन, चमक्कन, बोलन आदि, आवना (आना) पीवना, देवना आदि, इस मसनवी की भाषा को हरियाणवी से प्रभावित प्रमाणित करते हैं। कई और तत्व भी हैं, जिसकी चर्चा के लिए इस छोटे से निबंध में गुंजाइश नहीं है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

2. ब्रज, अवधी और राजस्थानी भाषा

दिल्ली के समीपवर्ती प्रदेश ब्रज का केंद्र है। निज़ामी के परवर्ती दक्खिनी कवियों पर ब्रज का बड़ा असर पड़ा। दक्खिनी के सुलतान इब्राहीम आदिल शाह ने 'किताबे नौरस' ब्रज में लिखा। इस मसनवी में ब्रज का पुट भी मिलता है। अवधी में प्रयुक्त 'ब्रज' अव्यय, भविष्यत् काल का प्रत्यय 'सी' जो कि राजस्थानी और पंजाबी का है, इस मसनवी में पाए जाते है।

3. पंजाबी भाषा

इस मसनवी में प्रयुक्त आन्या (लाया), दी से (दिखाई दे), सुनीए (पंजावी ढंग का संवोधन), कीया (किया), अग्ग (आग), दूजा (दूसरा), आले (कहे), बदल (बादल) आदि अनेक उदाहरण उद्घृत किए जा सकते हैं।

4. सिंधी भाषा

प्रस्तुत मसनवी में अंतिम अक्षर पर ज़बर लगाया गया है जिसे अब हिन्दी व्यक्त कर रही है। किन्तु सिंधी में यह प्रवृत्ति अब भी कायम है। सिंधी प्रभाव के कुछ उदाहरण देखिए —

घुरे (माँगे, चाहे), अच्च (हो, आव), मंझार (में, वीच में), तलहार (नीचे), हिएं (हृदय) आदि।

5. मराठी भाषा

अवधारणासूचक 'च' और नकारार्थक 'नको' का प्रयोग इस काव्य में आया है, जो कि दक्खिनी की पहचान के चिह्न माने जाते हैं। मराठी के जो शब्द कवि ने प्रयुक्त किए हैं वे इस प्रकार हैं—

आगला (विशेष), अझूं (अभी), अभाल (आभाल, मेघ), भुईं (भूमि), रावाँ (रावा = तोता), सेंसार (संसार) आदि।

6. गुजराती भाषा

जे (जो)' मान्ह (में), वापड़ा (निर्धन, वेचारा), वीझू (दूसरी बार, बाद), पोंगडा (लड़का), दूजा (दूसरा) आदि।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

7. तेलुगु भाषा

तेलुगु के बेदा होना (अलग होना), नीलु से 'नीर' शब्द, ज्यादा शब्द का 'ज्यस्ती' प्रयोग आदि देखे जा सकते हैं।

8. अरबी–फ़ारसी के शब्द

'मसनवी क़दमराव पदमराव' में अरबी–फारसी शब्द इतने कम प्रयुक्त हुए हैं, जो आटे में नमक के बराबर माना जा सकता है। यह तो बता चुके हैं कि अरबी-फारसी शब्द हिन्दी के साँचें में ढाल दिए गए हैं। ऐसे शब्द भी पाए जाते हैं, जिनके पूर्वार्द्ध अरबी–फारसी के हैं और उत्तरार्द्ध हिन्दी के। यथा—मुसख्ख़र करन (वश में लाना), मुसख्खर हुआ (वशीभूतहुआ)। इसी प्रकार अन्य

अरबी-फारसी के अन्य शब्द भी मिलते हैं।

कलम, फरिश्ते, नबी, बुनियाद, सिवा, दुनिया, शाह, माल, कलन्तर आदि।

उपर्युक्त उदाहरणों से यह बात स्पष्ट हो जाती है कि दक्खिनी का मूल ढाँचा दिल्ली और हरियाणा की तद्‌युगीन भाषा ही है। खड़ीबोली और हरियाणवी दक्खिनी की आधार भाषा है, जिसमें हिन्दी की अन्य बोलियों एवं उपभाषाओं के तत्त्व ही नहीं, अपितु अन्य आर्य भाषाओं के तत्त्व भी सम्मिलित हुए हैं। दक्खिनी नाम को सार्थक करते हुए हिन्दी की इस बोली ने द्रविड़ भाषाओं का, स्वल्प मात्र ही सही, प्रभाव भी ग्रहण किया।

ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी, सिंधी, गुजराती, मराठी आदि भाषाओं के तत्त्व दक्खिनी को रूप देने में सहायक हुए। दक्खिनी के विकास काल में इन भाषाओं का विकास शीघ्र हो रहा था। इसलिए उनके तत्त्व भी जुड़ गए। उत्तर में पृथक्-पृथक् बोलियाँ और उपभाषाएँ समृद्ध होती गईं, जो एक दूसरे के साथ संबंध रखते हुए भी एक दूसरे से दूर चली गईं। दक्कन में पल्लवित और विकसित हिन्दी नव्य भारतीय आर्य भाषाओं के

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

उदयकाल को होने के कारण सभी भाषाओं के सम्मिलित तत्त्वों को अपने साथ लेकर विकसित हुई। अपने विकास काल में उसने दक्खिनी को गुजराती और अन्य क्षेत्रीय भाषाओं से भी शब्द ग्रहण किए। तेलुगु और कन्नड़ भाषी प्रदेशों में दक्खिनी का प्रवेश हो गया तो वह इन भाषाओं का प्रयोग स्वीकार किए बिना न रह सकी, चाहे अल्प मात्रा में ही क्यों न हो।

'मसनवी कदमराव पदमराव' में प्रयुक्त निम्नांकित लोकोक्तियों से भाषा का चलता हुआ रूप भी समझा जा सकता है—

1. छुरी अत कुन्दन सी कि जे होए।
असंगत न तिस घाल ले पेट कोए ॥
(छुरी सोने की होने पर भी उसे कोई पेट में नहीं मार लेता)

2. दद्या साँप का होए जे कावडी।
डरे क्यूं न वह देख फाँदा पडी ॥
(साँप का डसा रस्सी से भी डरता है।)

3. वडे साच कहकर गए बोल अचूक।
दधा दूद का छाचहा पीवे फूक ॥
(दूध का जला छाछ को भी फूंक मार-मार कर पीता है।)

4. न सुन्या अलोलग कि इस वर्तमान।
सुखी आपना जीव तो सब जहान।
(अपना जहाँ खुश तो ज़मीन आसमान खुश)

5. कंगन हत्त क्या देखना आरसी।
अहै राज तूं देख क्यों हारसी ॥
(हाथ के कंगन देखने के लिए आरसी को क्या जरूरत है।)

प्रस्तुत मसनवी की व्याकरणिक संरचना पर विचार किया जाए तो हमें उसमें कई रूप देखने को मिलते हैं।

संज्ञा : 'मसनवी कदमराव पदमराव' में प्रयुक्त अधिकांश संज्ञाएँ संस्कृतमूलक हैं। संस्कृत शब्द तीन प्रकार के मिलते हैं– तत्सम, अर्द्ध तत्सम एवं तद्भव।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

तत्सम शब्द

जग, पाताल, वल, भाग, आकाश, अधिक, मुख, रूप, मुकुट, आधार, खड्ग, भुजंग, नारी, परिमल, सेवा, नायक, अभिमान, अपार, नयन, नदी, पाप, मधुर, मन आदि ।

अर्द्ध तत्सम शब्द

अंदकार, अकाश, निरचार, उपास, जोत, दिष्ट, दोस, पुरुस आदि ।

तद्भव शब्द

आँख, कान, काम, आग, नाक, पहर, पात, पिरत, माटी, रुक्ख, समंदर, साँप आदि ।

हिन्दी में आकारांत विशेषणों के अतिरिक्त अन्य विशेषणवाची शब्द विशेष्य के लिंग एवं वचन से प्रभावित नहीं होते । 'मसनवी कदमराव पदमराव' में ऐसे विशेषण रूप देखे जा सकते हैं, जिनमें विशेष्य के लिंग-वचन संबंधी परिवर्तन हुए हैं । स्व. डॉ. श्रीराम शर्मा जी का विचार है कि इस प्रकार के रूप पुरानी दक्खिनी में अपवाद रूप में ही मिलते हैं ।

उदाहरण के लिए—

सुन्दरियाँ रानियाँ, दासरियाँ शेरियाँ, सभीं फत्तरन आदि ।

इस मसनवी में जिन सर्वनामों का प्रयोग हुआ है, वे अपना विशेष स्थान रखते हैं । उदाहरण के लिए;

1. पुरुष वाचक – मैं, हौं, तूं, तैं, सूं ।
2. निजवाचक – आप ।
3. निश्चयवाचक – यह, वह, ईह, वोह ।
4. अनिश्चयवाचक – कोई, कछू, कुच, चुक ।
5. संवंधवाचक – जू, जे ।
6. प्रश्नवाचक – कौन, कवन, क्या, का, क्यूं ।

सर्वनामों के विकारी रूप अनेक हैं, जो मसनवी से जाने जा सकते हैं । विस्तार भय से उनकी चर्चा यहाँ नहीं की जाएगी ।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

क्रिया : प्रस्तुत काव्य की शब्दावली हिन्दी में हुए परिवर्तन की विभिन्न अवस्थाओं को व्यक्त करती है।

क्रिया के साधारण रूपों में अनुनासिकता के उच्चारण के बारे में पहले बताया जा चुका है। धातु के साथ 'न' लगाकर क्रिया रूप बनाए गए हैं। जैसे; करन, मरन, उडन, धरन, गमन आदि।

व्रज और पंजावी में इस प्रकार के रूप प्रचलित हैं। क्रिया के निम्नलिखित विधि रूप देखिए–

धरे, करें (कर अर्थ में), पीवें, खाएँ, देवँ, दिखलाव आदि।

प्रस्तुत मसनवी में क्रिया धातु के साथ 'सी' का प्रयोग पाया जाता है। डॉ. अबुल्लैस सिद्दीक़ी का कहना है कि लाहौर की पंजावो में आज भी 'सी' भविष्यत् के अतिरिक्त सामान्य वर्तमानकाल की सहायक क्रिया 'था' के स्थान पर प्रयुक्त किया जाता है। इस मसनवी में भविष्यतकाल सूचक 'सी' के अनेक प्रयोग पाए जाते हैं। यथा–

छोड़सी, रहसी, घिकसरी, न्होसी, हंकारसी आदि।

संयुक्त क्रियाएँ– प्रस्तुत मसनवी में प्रयुक्त संयुक्त क्रियाएँ, देशज, शब्द, संज्ञा धातु आदि के साथ सहायक क्रिया लगाकर बनाई गई हैं।

दिखावन सकूं, करन लागा, विनती करन, देखन पड़े, विचार करन सक्के आदि।

संयुक्त क्रियाओं के नित्य व्यवहृत रूप भी मिलते हैं;

कर सके, ले गए, दे दिया, लोप गया, जा वैठा, टूट पड़्या (टूट पड़ा), बोल उठ्या, मार्‌या डाल्या।

सामान्य भूतकालिक रूप

रह्या, मार्‌या, सुन्या, चल्या, उठ्या, मिल्या, रह्या आदि।

पंजावी से प्रभावित भूतकालिक रूप द्रष्टव्य हैं–

दित्ते (दिए), कीता (किया)।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

क्रिया के भूतकालिक रूप अनेकता लिए हुए हैं। जैसे-
करना क्रिया के करा, किया, कीता तीन रूप मिलते हैं।

सहायक क्रिया : है, अहैं, अथा, आथा, अथे, अथी, अछे, आछे (रहे), होए, हाई, रहै, राहा आदि।

पूर्वकालिक कृदंत। यथा–
जोतकर, दिष्टकर, कोपकर, बिचारकर आदि।
द्वैतपूर्वकालिक क्रिया का उदाहरण–
दूर कर कर।

प्रेरक क्रियाएँ– बुलाव, दिलाव, दिखलाव, पिलाव आदि।

परसर्ग– नव्य भारतीय आर्य भाषाओं में कारक चिह्न अथवा परसर्ग के बिना भी संज्ञाओं का प्रयोग किया जाता है। यह विशिष्ट प्रयोग दक्खिनी में कारक चिह्नों पर हिन्दी की बोलियों, उपभाषाओं एवं अन्य भाषाओं का प्रभाव दिखाई देता है। 'मसनवी कदमराव पदमराव' में कारक चिह्नों की अनेकरूपता तत्कालीन भाषा की स्थिति व्यक्त करती है।

कर्त्ता कारक– 'ने' प्रत्यय का इस मसनवी में अभाव है। यह इस तथ्य को सूचित करता है कि आज से पौने छः सौ वर्ष पूर्व हिन्दी में 'ने' प्रत्यय का प्रयोग नहीं होता था। पूरब की अवधी, भोजपुरी आदि में आजकल अथवा प्राचीन साहित्य में 'ने' का प्रयोग नहीं मिलता। निज़ामी के परवर्ती कवियों ने 'ने' का प्रयोग किया है।

(कर्मकारक) : कूं
(करण कारक) : ते, तें, थी, थीं, सूं, सात, सेती, से।
(सम्प्रदान कार) : कूं, कू, कारन।
(उत्पादन कारक) : थी, थीं।
(सम्बन्ध कारक) : का, के, की, केरा, केरे, केरी, करा।
(अधिकरण कारक) : ते, पर, ऊपर, उपरार, में, महं, मांह, मंझार।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

उपसर्ग और प्रत्यय :– प्रस्तुत मसनवी में उपसर्ग और प्रत्यय लगाकर बनाए अनेक शब्द प्रयुक्त किए गए हैं। मुख्यतः संस्कृत उपसर्ग जोड़कर बनाए गए शब्द मिलते हैं। अरबी-फारसी के उपसर्गों से निर्मित शब्द बहुत ही कम हैं।

संस्कृत उपसर्गों से निर्मित शब्द –

अ– असंगत, सबल, अदास, अपार, अबुद्ध आदि।

कु– कुबल, कुबुद्धी, कुजात, कुपंग।

नि– निसंग

निर- निरधार, निराधार, निरमला।

अव– अवगुण, अवसगुन।

प्र (पर)– परसाद, परधान।

पर– परनार, परबस, परउपकार, परमुख।

अरबी–फारसी के उपसर्ग

बे– बेसत्तरा

दर– दरसदा

प्रस्तुत काव्य में अपभ्रंश से स्वीकृत प्रत्यय 'पन' और उसके विकृत रूप 'पना', 'पनी' आदि लगाकर निर्मित शब्दों की बहुलता है। कतिपय उदाहरण द्रष्टव्य हैं —

पन– भावपन, हितपन, तरुनपन, झूटपन, बालपन, जानपन, एकपन आदि।

पना– मीतरपना, ठगठगपना।

पनी– धनुबरतपनी, संगतपनी, मंतरपनी। 'पन' और 'पनी' लगा कर बनाए शब्द–

देनूपन, खूनीपन।

'वंत' और 'वंदी' लगाकर बनाए शब्द –

हितवंत, बुधवंत, सतवंत, बलवंदी, चकवंदी।

'आव' प्रत्यय लगाकर निर्मित शब्द –

दिलाव, रखाव, दिखाव, सिखाव, बुलाव, उचाव आदि।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

धातुओं के साथ 'हार' प्रत्यय लगाकर कर्तृवाचक शब्द बनाए जाते हैं–

देनहार, रचनहार, कहनहार, सुननहार, करनहार आदि ।

'मसनवी कदमराव पदमराव' के रचनाकाल में दक्खिनी का परिनिष्ठित रूप तैयार नहीं हुआ था । एक शब्द के भिन्न भिन्न रूप इसके प्रमाण हैं :

आकास, आकाश, अकास, अक्कास ।

अधार, आधार, आदार ।

अधिक, अदिक ।

अखर, अच्छर, अक्कर ।

अनुकरणात्मक शब्द

अनुकरणात्मक संज्ञाएँ ध्वनि के अनुकरण पर बनाई गई हैं । ये शब्द अत्यंत महत्वपूर्ण हैं । उदाहरण द्रष्टव्य है :

शब्द द्वित्व ठार-ठार, चुन-चुन, चूक-चूक, चर-चर, जम-जम, झार-झार, गरज-गरज, बरस-बरस ।

शब्द के पूर्वांश में कुछ परिवर्तन होता है, अनेकी अनेक, वरसा बरस, ठारें-ठार आदि । अन्य उदाहरण हैं :-

हाल-झूल, लांप-जांप, जग्ग-थग्ग आदि ।

'मसनवी कदमराव पदमराव' में समस्त पदों की बहुलता है । भिन्नार्थक हिन्दी, फारसी और संस्कृत शब्दों से अनेक शब्द निर्मित किए गए हैं । डॉ. कादरी ने ठीक ही लिखा है कि दक्खिनी के पुराने लेखकों ने विभिन्न भाषाओं के संयोग से अनेक उपयोगी एवं विचारणीय समासों की रचना की हैं । प्रस्तुत मसनवी में प्रयुक्त समस्त पदों के उदाहरण देखिए–

पाव-बल, घाव-तल, हम-बल, गगन-दल,
मुख-तल, नूर-धर, (अरबी और हिन्दी),
दिष्ट-तल, राज-थल, पंख-बल, संजोग-जोग,
भग्ग-जग, दान-तल, सीस-फूल आदि ।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

विपरीतार्थक शब्द युग्मों के उदाहरण भी पाए जाते हैं :

न्याव × अन्याव
सुजात × कुजात
सुबुद्धी × कुबुद्धी
सुबुद्ध × अबुद्ध
गुन × अवगुन
दोस × अदोस
हित × अहित

दक्खिनी में एक ही अर्थ के लिए मध्यकालीन आर्यभाषा काल से प्राप्त एक से अधिक शब्दों का व्यवहार होता है। यह प्रवृत्ति प्रारंभकाल में बहुत ही प्रबल रही। उदाहरण द्रष्टव्य हैं।

नारी, तिरी, नार, महर्‌या, महरनी, इस्तिरी, इस्तिरियां।
अकास, अंबर, अक्कास, फलक, गगन, आकास।
धरती, धरत, संसार, सॅंसार, भुइं, दुनिया।

इस मसनवी में आए पर्यायवाची शब्दों की सूची नीचे दी जा रही हैं :-

सूरज, भान, सूर, दिनमान, रवि, आदित, अदो।
पाथर, फतर।
समंदर, समंद, सागर।
नीर, पानी, जल।
खड्‌ग, तलवार, खंडा।
घन, घटा, मेग, बादल, अभाल, बदल।
करतार, गुसाइं, खुदा।।
राजा, शाह, राव, रावत।
कनक, कुंदन, भंकार, हेम, सुन्ना, सुनना
सांप, नाग, नागिन, सर्प।
गज, हाती, हस्ती।
चंदा, चंदर, चंद, चंदनां, ससा।

18)

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

लिंग और वचन

प्रस्तुत मसनवी में लिंग-वचन संबंधी अव्यवस्था मिलती है। यह दक्खिनी की निजी विशेषता हैं :

नाग-नागिन, नागिनी

पापी-पापिन

हिन्दी-उर्दू में अकारांत पुल्लिगवाची शब्दों के अविकृत रूप बहुवचन में अपरिवर्तित रहते हैं। किंतु दक्खिनी में 'अ' को 'आं' कर दिया जाता हैं।

उदाहरण के लिए ;

बहुत-बहुतां
हंस-हंसानां
वचन के अन्य रूप
नन्हा-नन्हे
चेला-चेलान
परदेसी-परदेसीन
नयन-नयनन
अकर, अखर-अक्करन
एकवचन में 'यां' लगाए गए रूप
सयानां, अयानां, रांवा आदि।

लिंग और वचन की अव्यवस्था के उदाहरण हैं:-

कई नार, गया लोग।

अव्यय

खड़ीबोली में प्रयुक्त अव्यय ही 'मसनवी कदमराव पदमराव' में प्रयुक्त हुए हैं। कतिपय अव्ययों का संबंध हिन्दी की बोलियों एवं उपभाषाओं से हैं। यथा–

विरोध दर्शक- वले
संकेतवाचक व्यधिकरण- अगर, जे
पंजाबी से प्रभावित कालवाचक- अझूं

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

स्थानवाचक- अंघें,पिच्छें

संयोजक- होर, और

मराठी तथा गुजराती से गृहीत अवधारणवाचक- च

नकारार्थक- नको, नहीं

स्थानवाचक व संबंधवाचक- अगला, आगला

अवधी आदि बोलियों से प्राप्त अव्यय- बाज

स्थानवाचक क्रियाविशेषण अव्यय 'आगे के निम्नलिखित रूप पाए जाते हैं- अंगे, अंग्गे, अंघें, अंग्घे ।

इसी प्रकार –पिच्छे, पाछे, पिछें

अन्य अव्यय– नीडे, पास, संमुख, कीधर, चहूंधिर अलोलग, जबलग, जमजम, जद्दकद, जब-तब, जमारे, जरम, अंतलग, जधां-तधां । परन्तु तक, तलक, तलग आदि का प्रयोग इस काव्य में नहीं मिलता । सर्वत्र 'लग' रूप ही प्रयुक्त हुआ है ।

तल, तलें, तलार आदि अधिकरण कारक के रूप दक्खिनी के परवर्ती ग्रंथों में पाए जाते हैं । किन्तु 'मसनवी कदमराव पदमराव' में तल, तल्हें, तल्हार आदि रूप मिलते हैं । इन रूपों से यह बात जाहिर होती हैं कि प्रारंभ में तल रूप के साथ तल्हें, तल्हार आदि रूप भी प्रचलित थे । बाद में 'ह छोड़कर तल रूप के तर्ज पर 'तल' और 'तलार' बनाए गए ।

पन, संग, सात, संधान, बिन, घुरे, जद घुरे.. तद घुरे, गर, भी, कारन, थकायक, अंदर, बाहर, पहर, फिर, फीर, कन, बीच आदि ।

'चाहिए' का प्रयोग भी मिलता है । न चाए (न चाहिए) रूप भी पाया जाता है ।

भाषिक अवदान

दक्खिनी हिन्दी वर्तमान खड़ीबोली का पूर्ववर्ती रूप है जिसे हिन्दी भाषी ही नहीं बल्कि उर्दू भाषी भी अपनी विरासत समझते हैं । दक्खिनी हिन्दी का विकास बारहवीं-तेरहवीं शताब्दियों की उस हिन्दी से हुआ जो दिल्ली और

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

समीपवर्ती प्रदेशों में प्रयुक्त होती थी। उसमें संस्कृत, अपभ्रंश, हरियाणवी, राजस्थानी, सिंधी आदि अनेक भाषाओं के तत्व विद्यमान हैं। नव्य भारतीय आर्य भाषाओं की प्रारंभिक अवस्था का स्वरूप दक्खिनी प्रदान करती है। अनेक भाषाओं के सम्मिलित प्रभावों से युक्त दक्खिनी ने अपने जन्म स्थान से दूर दक्षिण के नए वातावरण में कैसे अपना रूप निश्चित किया, इसका सही ज्ञान प्राप्त करने के लिए दक्खिनी का साहित्य ठोस सामग्री प्रदान करता हैं।

दक्खिनी की आधार भाषा खड़ीबोली है। दक्खिनो पर हरियाणवी, ब्रज, अवधी, राजस्थानी, पंजाबी आदि भाषाओं के प्रभाव की बात करते समय हमें इस बात का स्मरण करना चाहिए कि ऊपर उल्लिखित कोई भी भाषा उस युग में इतनी शक्ति नहीं रखती थी कि वह किसी अन्य भाषा पर अपना प्रभाव डाल सके। अतः प्रभाव की बात से यह समझ लेना चाहिए कि दक्खिनी का उदयकाल अन्य भाषाओं का भीं उदयकाल रहा जिसकी वजह से अन्य भाषाओं के तत्व भी दक्खिनी में पर्याप्त मात्रा में आ गए। धीरे-धीरे उत्तर की भाषाएँ अपने पृथक अस्तित्व एवं व्यक्तित्व से संपन्न होती गईं। किंतु भौगोलिक दूरी के कारण दक्खिनी अपने मिले-जुले रूप से अपने को मुक्त न कर सकीं। दक्खिनी की क्षेत्रीय भाषाओं के संपर्क से दक्खिनी अपने मूल रूप से कुछ और परिवर्तित हो गई। यदि दक्खिनी को क्षेत्रीय भाषाओं-गुजराती, मराठी, तेलुगु, कन्नड़, तमिल, मलयालम के प्रभावों से मुक्त कर दिया जाए तो आप देखेंगे कि भाषा का यही रूप उत्तर भारत में उन दिनों प्रयुक्त होता था। भाषा का यह मिला-जुला रूप सर्वप्रथम हमें आचार्य हेमचंद्र के व्याकरण में उद्धृत दोहों में देखा जा सकता है। फिर कबीर की वाणी में भी यह मिश्रित भाषा-रूप पाया जाता है।

यह उल्लेखनीय है कि हेमचंद्र के व्याकरण में उद्धृत दोहों एवं कबीर के दोहों-पदों की भाषा में जो तत्व पाए जाते हैं, उनके रूपों और शब्दों में जो विशिष्ट गुण मिलते हैं वे विशिष्ट गुण दक्खिनी के आदिकालीन ग्रंथों में भी पाए जाते हैं। इसलिए यह विचार सही नहीं लगता कि कबीर की वाणी में

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कई भाषाओं का सम्मिलित प्रभाव कवि के घुमक्कड़ स्वभाव का परिणाम है। वस्तुतः उस युग की भाषा में अनेक भाषाओं का सम्मिलित प्रभाव रहा है जिसका प्रमाण हमें हेमचन्द्र के व्याकरण में उद्धृत पदों एवं कबीर की वाणियों के अतिरिक्त अब्दुल क़ुद्दूस गंगोही कृत रुइदनामा और तद्युगीन अन्य ग्रंथों एवं दक्खिनी के आदिकालीन ग्रंथों में प्राप्त होता है।

दक्खिनी में कबीर आदि की भाषा की भाँति उत्तर की विभिन्न बोलियों के तत्त्व विद्यमान हैं। साथ ही दक्खिनी की गुजराती, मराठी आदि आर्य परिवार की भाषाओं का गहरा प्रभाव पाया जाता है। गुजराती और मराठी का प्रभाव बड़ा ही गंभीर और व्यापक रहा है। इन भाषाओं से गृहीत तत्त्वों को दक्खिनी ने अपने में यों पचा लिया है कि वे उसके अपने ही परिचायक तत्त्व या लक्षण से हो गए हैं। बाद में दक्खिनी जब दक्किन की भौगोलिक सीमाओं का अतिक्रमण कर संपूर्ण दक्षिण भारत में व्याप्त हो गई तब उस पर तेलुगु, कन्नड़, तमिल और मलयालम का प्रभाव भी पड़े बिना नहीं रहा।

अब इस बात पर विचार करना अपेक्षित है कि दक्खिनी उर्दू का पूर्व रूप है या आधुनिक हिन्दी का? यहाँ इस बात को स्मरण करना चाहिए कि भाषावैज्ञानिकों ने उर्दू को हिन्दी का अविच्छिन्न रूप माना है। हिन्दी और उर्दू में सबसे बड़ा अंतर यह है कि हिन्दी नागरीलिपि में लिखी जाती है और उर्दू अरबी-फारसी लिपि में। फिर दोनों भिन्न इसलिए है कि जहाँ हिन्दी में संस्कृत शब्द व्यवहृत किए जाते हैं, वहाँ उर्दू में अरबी-फारसी अलफ़ाज का ज्यादा इस्तेमाल किया जाता है। आधुनिक काल में हिन्दी-उर्दू में जो अंतर पाया जाता है, वह दोनों भाषाओं के साहित्य में प्रकट होता है। काव्य भाषा के स्तर पर यह अंतर काफी गहराई से महसूस होता हैं। जहाँ तक बोलचाल की भाषा का रूप है दोनों बहुत निकट पड़ती हैं; प्रायः दोनों एक ही हैं।

धर्म या मजहब के नाम पर भाषा का संबंध जोड़ा नहीं जा सकता। यह तो सर्वविदित है कि हिन्दी के साहित्यकार केवल हिन्दू ही नहीं हैं

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

और न उर्दू के साहित्यकार केवल मुसलमान ही। दोनों भाषाओं के प्रतिभावान साहित्यकार किसी एक धर्म के नहीं रहे और न रहेंगे। इसी संदर्भ में दक्खिनी हिन्दी के आदिकालीन ग्रंथों का सम्यक् निरीक्षण करें तो आप देखेंगे कि इनमें संस्कृत तत्सम और अर्द्धतत्सम शब्दों की ओर झुकाव है। जिस 'मसनवी कदमराव पदमराव' को 'उर्दू की पहली तस्नीफ़' बताकर उर्दू के साहित्यिक इतिहास में स्थान दिया गया है, उसमें प्रयुक्त कुल बारह सहस्र शब्दों में दस सहस्र शब्द संस्कृतमूलक हैं, बाकी डेढ़ सौ के करीब अलफ़ाज़ ही अरबी-फारसी के हैं। यदि इस ग्रंथ को उर्दू का प्रथम ग्रंथ माना जाए तो इस बात में कोई मतभेद नहीं हो सकता कि उर्दू हिन्दी की ही एक शैली है, जो पहले संस्कृत शब्दों से अनुप्राणित थी। बाद में अरबी-फारसी शब्दावली के अत्यधिक प्रयोग से उर्दू का उदय हुआ। यह भी मानना पड़ेगा कि पन्द्रहवीं और सोलहवीं शताब्दी की हिन्दी चाहे उत्तर की हो या दक्षिण की लगभग एक जैसी ही रही है। इस काल में हिन्दी-उर्दू की पृथकता को लेकर कोई विशेष विचार उत्पन्न नहीं हुआ था। जहाँ तक दक्किन में उर्दू के उदय का प्रश्न है, वली दकनी के काल तक दक्खिनी अपने मूल रूप से अर्थात् हिन्दी से अपना अविच्छिन्न संबंध बनाए रखती आई। दक्खिनी में उर्दू का मूल उत्स ढूंढने वाले इस बात की घोषणा कर रहे हैं कि वली दकनी के समय तक हिन्दी-उर्दू नाम से दो समानांतर शैलियां उत्पन्न नहीं हुई थीं।

यह उल्लेखनीय बात है कि दक्खिनी के किसी एक कवि ने अपनी भाषा को उर्दू नाम से नहीं पुकारा। उन्होंने हिन्दी, हिन्दवी, दक्खिनी, गूजरी, रेख्ता आदि नामों का प्रयोग करने पर भी अपनी भाषा के लिए उर्दू शब्द का उपयोग कहीं नहीं किया। फिर भी लिपि एवं कुछ समान तत्वों को देखकर दक्खिनी के सारे साहित्य को उर्दूवालों ने अपनी संपत्ति मानकर उर्दू के साहित्यिक इतिहास में स्थान दिया है। यह सत्य है कि हिन्दी के कतिपय विद्वानों ने दक्खिनी को हिन्दी का अभिन्न अंग माना है। किन्तु आज भी हिन्दी के साहित्यिक इतिहास की मुख्यधारा में दक्खिनी को समाविष्ट करके समग्र रूप से हिन्दी साहित्य का मूल्यांकन नहीं किया गया है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

डॉ. वी. पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर

विद्वानों ने दक्खिनी के अनेक गद्य-पद्य ग्रंथों का भाषा विश्लेषण करके इस बात को प्रमाणित किया है कि दक्खिनी हिन्दी का मूल ढाँचा खड़ीबोली है। किंतु खड़ी बोली दक्खिनी हिन्दी के सर्वप्रथम एवं सर्वाधिक प्रमाणिक ग्रंथ मसनवी कदम-राव पदमराव के अनुपलब्ध रहने के कारण उसे अध्ययन का विषय नहीं बनाया गया। 'मेराजुल आशिक़ीन' नामक गद्य ग्रंथ को दक्खिनी का सर्वप्रथम बताया जाता था और इस गद्य-कृति के लेखक के रूप में वरिष्ठ सूफी संत बन्दे नवाज़ गेसूदराज़ का नाम लिया जाता था किंतु अन्य नवीन खोजों के आधार पर यह बात स्पष्ट हो गई है कि 'मेराजुल आशिकीन' के रचयिता गेसूदराज़ न होकर मख़दूम शाह हुसैनी बीजापुरी हैं। यह बन्देनवाज़ के कई वर्ष बाद हिजरी सन् 1070 में लिखी गया माना जाता है।

दक्खिनी हिन्दी के सर्वप्रथम प्रामाणिक ग्रंथ के रूप में तथा खड़ीबोली के सर्वप्रथम आख्यानक काव्य के रूप में निज़ामीकृत 'मसनवी कदमराव पदमराव' की भाषा का ऐतिहासिक महत्व है। इस ग्रंथ की आधार भाषा खड़ीबोली और हरियाणवी है और पंद्रहवीं शती की सारी भाषिक विशिष्टताएँ इसमें पाई जाती हैं। इस मसनवी के रचना क़ाल के दौरान खड़ीबोली में कोई ऐसा आख्यानक काव्य नहीं लिखा गया जो भाषा के क्रमिक विकास को प्रस्तुत करता हो। इस दृष्टि से इस काव्य का महत्त्व सर्वोपरि है। इसमें आधुनिक हिन्दीं का स्रोत ढूंढा जा सकता है॥

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

नादेल्ल पुरुषोत्तम कवि के नाटकों की भाषा-शैली

डॉ. भीमसेन निर्मल

हिन्दी साहित्य के अध्ययन में दक्खिनी भाषा एवं साहित्य के अध्ययन का विशिष्ट स्थान है। "दक्खिनी हिन्दी साहित्य की ऐसी कड़ी है जिसको भुलाया नहीं जा सकता"[1] क्योंकि हिन्दी के आधुनिक साहित्य की प्रगति में दक्खिनी का योगदान अत्यंत सराहनीय है। वास्तव में हिन्दी साहित्य के इतिहास में ब्रज, अवधी, मैथिली आदि के साहित्यकारों का जो समादृत स्थान है, लगभग उसी आदर के अधिकारी हैं दक्खिनी के साहित्यकार।

दक्खिनी साहित्य का संबंध हैदराबाद राज्य के तेलंगाना और कर्नाटक प्रांतों से अधिक रहा है। प्राप्त प्रमाणों से यह सिद्ध होता है कि दक्खिनी साहित्य हैदराबाद को केन्द्र बनाकर विकसित हुआ था। तेलंगाना का केन्द्र अथवा मध्य बिंदु लगभग हैदराबाद ही है। अतः यह मानने में कोई आपत्ति नहीं हो सकती कि तेलंगाना ही दक्खिनी साहित्य का रंगस्थल रहा है। दक्खिनी के सुप्रसिद्ध कवि मुल्ला वजही (सन् 1609 के आसपास) के निम्न उद्धरण से यह बात सिद्ध हो जाती है–

"दखिन सा नहीं ठार संसार में
निपज फाजिलां का है इस ठार में
दखिन है नगीना अँगूठी है जग
अँगूठी कूं हुमंत नगीना ही लग।

---

1. दक्खिनी हिन्दी काव्यधारा; राहुल सांकृत्यायन-भूमिका भाग से।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

दखिन मुल्क कुंधन अजब साज है
कि सब मुल्क सिर होर दखिन ताज है
दखिन मुल्क मोतेव खास अहैं
तिलंगाना उसका खुलासा अहे ।[2]"

प्रसिद्ध भाषासर्वेक्षक डॉ. जार्ज ग्रियर्सन ने भी दक्खिनी भाषा के अस्तित्व को स्वीकार किया है। उन्होंने अपनी प्रख्यात पुस्तक 'लिंग्विविस्टिक सर्वे ऑफ इंडिया' में दक्खिनी भाषा-भाषियों की संख्या को साढ़े तीन करोड़ से अधिक बताया है और उन-उन प्रांतों की भी सूची दी है, जहाँ यह भाषा बोली जाती है। उन्होंने इस भाषा के उत्तर भारत की ग्रामीण (मूल) भाषाओं से स्थापित संपर्क को सिद्ध करते हुए लिखा है कि इसमें (दक्खिनी में) हिन्दी व्याकरण के कई ऐसे रूप (जैसे 'मुझको' के लिए 'मेरे को') सुरक्षित है जो उत्तर भारत में ग्रामीण लोगों में प्रचलित हैं किन्तु जो साहित्य भाषा में नहीं प्रयुक्त होते।[2] इस भाषा में साहित्य की भी रचना हुई है जिनमें काव्य, नाटक और कथा-साहित्य उल्लेखनीय हैं। विभिन्न साहित्यकारों ने अपनी साहित्य रचना से इसकी श्रीवृद्धि की है। इन साहित्यकारों में श्री पुरुषोत्तम कवि का नाम लिया जा सकता हैं जिनके नाटकों का दक्खिनी साहित्य के इतिहास में विशेष महत्व है।

पुरुषोत्तम कवि आंध्र प्रदेश के कृष्णा जिला के सीतराम पुरी के निवासी थे। उन्होंने 112 रचनाएँ लिखीं जिनमें 32 नाटक थे। इन नाटकों में ग्यारह रामायण संबंधी नाटक, चार महाभारत संबंधी नाटक, दो ऐतिहासिक नाटक और अन्य विषयों पर पंद्रह नाटक लिखे गए हैं। ये नाटक गद्य और पद्य दोनों में हैं इनमें से अधिकांश नाटक इस समय अप्राप्त हैं। इन रचनाओं के ऐतिहासिक महत्व के अतिरिक्त अन्य दो दृष्टिकोणों से भी महत्ता परिलक्षित होती है।

---

1. दक्खिनी हिन्दी काव्य धारा पृ. 23।
2. भारत का भाषा-सर्वेक्षण—अनु, डॉ. उदयनारायण तिवारी, पृ. 306.

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रथम यह हैं कि दक्खिनी में लिखने वाले प्रायः सभी लेखक इस्लाम धर्मावलंबी ही है। पुरुषोत्तम जी ने कट्टर सनातन धर्मावलंवी होते हुए भी और तेलुगु भाषा-भाषी होने पर भी दक्खिनी हिन्दुस्तानी में रचनाएँ प्रस्तुत की हैं। द्वितीय यह है कि दक्खिनी साहित्य के इतिहास में इतनी प्रचुर मात्रा में साहित्य की सृष्टि करने वाला अन्य कोई रचयिता दृष्टिगोचर नहीं होता। दुर्भाग्य से आज इनके संपूर्ण हिन्दुस्थानी नाटक उपलब्ध नहीं हैं, तथापि प्राप्त चौदह नाटकों की सामग्री ही उन के महत्व को प्रतिपादित करने के लिए पर्याप्त है।

दक्षिण भारत में उत्तर भारत को हिन्दुस्तान के नाम से पुकारा जाता है। विंध्य के उत्तर प्रांत की भाषाओं को भी सामूहिक रूप से हिन्दुस्थानी या हिन्दुस्तानी नाम से अभिहित किया जाता है। अतः पुरुषोत्तम जी ने अपने नाटकों को 'हिन्दुस्थानी नाटक' कहा है। 'उन्होंने रामदास चरित्र' नामक नाटक की भूमिका में हिन्दी-हिन्दुस्थानी की चर्चा करते हुए अपने मंतव्य को इस प्रकार प्रकट किया है :

केवल देशी भाषाओं के समान है तुर्की[2]। संस्कृत-पद बहुधा देशी भाषाओं सी है हिन्दुस्थानी। हिन्दी और हिन्दुस्थानी वैसे पर्याय शब्द माने जा सकते हैं, पर व्यवहार में थोड़ा अंतर है। संस्कृत के व्यस्त[3] पदों का ही, सिंघासन, जत्तन, जम्मा आदि तद्भव शब्दों का ही प्रयोग करते हुए बोले जाने वाली भाषा हिन्दुस्थानी है। श्री पुरुषोत्तम जी के हिन्दुस्थानी नाटकों की भाषा का संस्कृत समास बहुला होने का प्रमुख कारण उनकी उपरोक्त धारणा ही है[4]।

1.··· लेकिन कलाकार इस साहित्य का कोई हिन्दु नहीं हुआ। दक्खिनी हिन्दी; डॉ. बाबूराम सक्सेना, पृ0 22।

2. आंध्र प्रदेश में उर्दू भाषा को तुर्की और मुसलमान को तुरका कहते हैं।

3. समस्त पदों का विग्रह किया हुआ।

4. हिन्दी के सुप्रसिद्ध कोशकार श्री रामचंद्र वर्मा भी 'हिन्दुस्तान' और 'हिन्दुस्तानी' के स्थान पर 'हिन्दुस्थान' और 'हिन्दुस्थानी' को अधिक समीचीन मानते हैं। अच्छी हिन्दी पृ. 189।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

यह सिद्ध किया जा चुका है कि समूचे भारत में सार्वदेशिक रूप से जिस हिन्दी का व्यवहार होता था, वह संस्कृतनिष्ठ अवश्य रही होगी। यह भी माना जाए कि इस प्रकार की भाषा के प्रसार में इस्लाम धर्मावलंबियों का विशेष सहयोग रहा है, तब भी उनकी भाषा में भी संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों की संख्या पर्याप्त रही होगी। कारण यह कि इस्लाम धर्मावलंबी लोगों की मातृभाषाएँ भारतीय भाषाएँ थीं और प्रत्येक भारतीय भाषा पर संस्कृत भाषा का प्रभाव स्पष्ट है। अतः जब तक इस भाषा पर "मज़हबी जामा" नहीं पहनाया गया, तब तक इस भाषा में संस्कृत के तत्सम एवं तद्भव शब्दों की अधिकता रही थी।

नाटक में मुख्य तत्वों में भाषा का प्रमुख स्थान है, क्योंकि नाटक के प्राण उसके संवाद होते हैं। भाषा उन संवादों की अभिव्यक्ति का माध्यम हैं। अतः अन्य साहित्यिक विधाओं में लेखक को अपने भावों, एवं विचारों को प्रत्यक्ष प्रकट करने का अवसर रहता है। परन्तु नाटककार को यह अवसर उपलब्ध नहीं रहता, जैसे पात्रों के संवादों में ही, अपने मंतव्य को प्रकट करना पड़ता है। अतएव नाटकों की भाषा के सुगठित और भावाभिव्यंजन होने में समर्थ होना आवश्यक है। नाट्यशास्त्र के 14वें अध्याय से लेकर 17वें अध्याय तक[1] और दशरूपक के द्वितीय प्रकाश में भाषा का विस्तृत विवेचन इसी दृष्टिकोण से किया गया है।

किसी भी कृति की भाषा का अध्ययन करते समय निम्न विषयों का विवेचन नितांत आवश्यक होता है :–

1. शब्द भंडार
2. व्याकरण
3. अलंकार योजना
4. भाषा का प्रयोग

अब श्री पुरुषोत्तम जी के "हिन्दुस्थानी" नाटकों में प्रयुक्त भाषा का विवेचन उपर्युक्त आधार पर प्रस्तुत किया जाता है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

शब्द भंडार : संस्कृत के प्रकांड विद्वान होने के कारण पुरूषोत्तमजीं की भाषा में संस्कृत तत्सम शब्दों की प्रचुरता है। उनका मत भी यही था कि संस्कृतनिष्ठ भाषा ही ''हिन्दुस्थानी'' है। हैदराबाद में रहते समय फारसी सीख लेने के कारण उन्होंने अरबी–फारसी शब्दों का भी प्रयोग किया है। यद्यपि उन्होंने पात्रानुकुल भाषा का प्रयोग किया है, पात्र की योग्यता या पद के अनुकूल संस्कृत तत्सम निष्ठ, संस्कृत तद्भवयुक्त भाषा के प्रयोग पर ध्यान दिया है। फिर भी यत्र-यत्र संस्कृत शब्दों के साथ अरबी-फारसी के शब्दों का जो सम्मिश्रण किया है, वह आज कुछ अस्वाभाविक सा प्रतीत होता है। उदाहरण के लिए; "रामदास चरित्रम्" में से दो उद्धरण प्रस्तुत किए जाते हैं–

"सानुग्रह होके आपका मेहर मेरे पर खूब पौंचाके।"
"खुदावंद् का किंकर्" आदि।

पुरुषोत्तमजी ने अपनी हिन्दुस्थानी नाटकों में तेलुगु में व्यवहृत संस्कृत तत्सम शब्दों का, तेलुगु के रूढ़ अर्थों में ही प्रयोग किया है। उदाहरणार्थ, 'अवकाश' तथा 'अवसर' ये दो शब्द प्रस्तुत किए जा सकते हैं। तेलुगु में इनके अर्थ क्रमशः 'अवसर' (मौका) तथा 'आवश्यकता' है। नाटककार ने ऐसे कई तेलुगु शब्दों का प्रयोग किया है।

पुरुषोत्तमजी ने "ही" के अर्थ में "इच्" का प्रयोग सर्वत्र किया है और कहीं-कहीं निषेधार्थक "मत" के लिए 'नको' का। इन दोनों शब्दों का प्रयोग दक्खिनी हिन्दी के वैशिष्ट्य के एक पक्ष को व्यक्त करता है। इन दोनों को दक्खिनी ने मराठी से ग्रहण किया है।

व्याकरण : संस्कृत एवं तेलुगु की समानांतर प्रतिपत्ति के कारण पुरुषोत्तमजी की भाषा पर इन दोनों भाषाओं का प्रभाव सर्वत्र परिलक्षित होता है।

---

1. 15वें अध्याय में व्याकरण, 16वें अध्याय में छंद-गीत, 17वें अध्याय में अलंकार, 18वें अध्याय में भाषा के प्रयोग एवं प्रकार की चर्चा मिलती है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

विशेषकर भाषा के व्याकरणांशों में इस प्रभाव को स्पष्ट देखा जा सकता है। आधुनिक युग की विकसित हिन्दी की शैली को ध्यान में रखते हुए पुरुषोत्तमजी के युग की भाषा के ये प्रयोग कुछ अटपटे से लगते हैं; लेकिन नाटकों की यह भाषा उस युग की स्वाभाविक भाषा थी, जिसको उन्होंने "हिन्दुस्थानी" नाम प्रदान किया है।

लेखक ने इन नाटकों का सृजन आंध्र भाषा-भाषी अभिनेताओं के द्वारा अभिनीत कराने के लिए किया है। अतः इन नाटकों की लिपि तेलुगु ही रखी गई थी। इनकी विशेषता यह है, कि उच्चारण के अनुरूप ही भाषा के लिखित रूप को प्रस्तुत किया गया है अर्थात बोलने और लिखने में एकरूपता लाने का उन्होंने आयोजित प्रयास किया है। उदाहरणार्थ, इत्ला (इतना), उस्कु (उसको), अगने होगा तो (अगर न होगा तो) सम्झेगा, (समझेगा) दुन्या (दुनिया), जान्ने (जानने) आदि।

इस प्रकार की प्रवृत्ति लिखने तथा बोलने में अंतर न रखने की पद्धति भारतेन्दुकालीन लेखकों की रचनाओं में और ईसाई मिशनरियों की रचनाओं में भी पाई जाती है॥

कवि ने अपनी हिन्दुस्थानी रचनाओं में तेलुगु व्याकरण के संधि नियमों का पालन किया है। संस्कृत के संधि नियमों के अतिरिक्त तेलुगु के कुछ अपने विस्तृत नियम हैं। तेलुगु वाक्य रचना में, संधि के नियम के अनुसार वाक्य के बीच में स्वर का स्वतंत्र प्रयोग नहीं होना चाहिए। यह स्वर अपने के पहले व्यंजन के साथ संधि के नियमों के अनुसार मिल जाता है, जिसे "पररूप संधि" कहते हैं। जब इस प्रकार संधि घटित नहीं हो सकती तब "य" या "व" का आगम अनिवार्य रूप से हो जाता है। इन नियमों के पालन करने से इस तरह के विन्यासों से हिन्दी में कभी-कभी विपरीत अर्थ का आभास होने लगता है। यथा, "कर आया है।" इसमें तेलुगु संधि नियमों के अनुसार "आ" अपने पहले के व्यंजन "र" के साथ मिल जाता है और उसका रूप "कराया" हो जाता है जो कि हिन्दी में प्रेरणार्थक अर्थ देता है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

1) बहु + आनंद = बह्वानंद, बहु + अनुचित = बह्वनुचित
2) आ + इधर = आयिधर आदि।

उपर्युक्त शब्दों में "व" और "य" का आगम हुआ है। इस प्रकार की संधि तेलुगु व्याकरण में "यडागम" संधि कहलाती है।

इस प्रकार के प्रयोगों के कई उदाहरण मूल खंड में पाए जाते हैं।

एक और मनोरंजक उदाहरण प्रस्तुत हैं :–

"वोहबप्नाषहर्मेंयिच् हाजर्भि हैं।"

व्यस्त शैली में इसका रूप होगा–

"वह अब अपना (ने) शहर में इच (ही) हाजिर भी है।"

तेलुगु में शब्द के अंतिम व्यंजन का पूरा उच्चारण होता है, हिन्दी के समान स्वरहीन रूप में नहीं। अतः यदि उपर्युक्त वाक्य को व्यस्त रूप में लिखा जाए तो वह तेलुगु की उच्चारण विधि के अनुसार ठीक नहीं रहेगा। अतः लेखक ने उच्चारण की शुद्धता का ध्यान रखते हुए, वाक्य को समस्त शैली में लिखा है। अतः लेखक के दृष्टिकोण को ध्यान में रखकर मूल को पढ़ने में वह हिन्दी भाषा की उच्चारण विधि के अनुकूल पड़ेगा।

तेलुगु में लिंग भेद शब्द के रूप पर आधारित नहीं है। तिर्यक और वाची शब्द "अमहत्" हैं, तो तद्भिन्न शब्द अर्थात् मनुष्य अथवा जड़ देवता-वाची शब्द "महत्" माने गए हैं। महत् के स्त्री रूप "महती" वाचक माने गए है। इनको आधुनिक तेलुगु व्याकरण में पु॰ नपुंसक विभाजन के रूप में ग्रहण कर लिया गया है। इस प्रकार स्पष्ट है कि तेलुगु में शब्द के अर्थ पर ही लिंग निर्णय होता है। अतः तेलुगु के लेखकों का हिन्दी में भाषा के प्रयोग में लिंग का विपर्यय करना स्वाभाविक ही है। सजग हिन्दीतर लेखक ही इस त्रुटि से बचा रह सकता है।

आधुनिक हिन्दी साहित्य के प्रारंभिक काल में प्रायः सर्वत्र लिंग की विपर्यय दृष्टिगत होता है। फिर ऐसे युग के लेखक होने के कारण और उस

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

समय आंध्र देश में हिन्दी के पठन-पाठन की व्यवस्था के न होने में पुरुषोत्तमजी की हिन्दुस्थानी रचनाओं में लिंग विपर्यय की उपस्थिति कोई आश्चर्य की बात नहीं है।

पुरुषोत्तम जी के समकालीन भारतेन्दु युगीन लेखकों में पाए जाने वाले भाव वाचक संज्ञा के दोष इनकी रचनाओं में दृष्टिगोचर नहीं होते। यथा माधुर्य के लिए माधुर्यता।

तत्कालीन लेखक पांडित्य प्रदर्शन के हेतु अपनी रचनाओं में दीर्घ और क्लिष्ट वाक्य-विन्यास, सामाजिक शब्दों का अधिक प्रयोग करना अपने लिए गौरव की बात समझते थे। यह सामान्य प्रवृत्ति पुरुषोत्तम जी की रचनाओं में स्पष्ट परिलक्षित होती हैं।

परिष्कृत हिन्दी में 'ने' का प्रयोग भूतकालिक सकर्मक कर्ता के साथ करना व्याकरण सम्मत माना जाता है। परन्तु डॉ. विनयमोहन शर्मा के एक लेख के अनुसार नागपुरी हिन्दी में भूतकालिक अकर्मक कर्ता के साथ 'भी' ने का प्रयोग होता है। पुरुषोत्तम कवि ने अकर्मक भूतकालिक दोनों क्रियारूपों के कर्ता के साथ 'ने' का प्रयोग किया है। तेलुगु डु, मु, वु, लु ये चार प्रथमा विभिक्ति के कारक चिह्न माने जाते हैं। हिन्दी खड़ी वोली में प्रथम विभक्ति के लिए कोई कारक चिह्न नहीं है। केवल भूतकालिक सकर्मक कर्ता के साथ 'ने' का प्रयोग होता है। अतः पुरुषोत्तमजी ने को तेलुगु व्याकरण के अनुसार कर्ताकार का चिह्न मानकर सर्वत्र कर्ता के साथ 'ने' का प्रयोग किया है।

अल्पप्राण अक्षर के स्थान पर अल्पप्राण और महाप्राण अक्षर के स्थान पर अल्पप्राण का प्रयोग करना दक्खिनी की विशेषता है। यथा: शौक के स्थान पर शौख, वक्त के स्थान पर बखत और हाथ तथा साथ के स्थान पर क्रमशः हात तथा सात पुरुषोत्तमजी की रचनाओं में इस प्रकार के प्रयोग काफ़ी मात्रा में मिलते हैं।

---

1. नागपुरी हिन्दी की विशेषताएँ–हिन्दी को मराठी सन्तों की देन।
—डॉ. विनयमोहन शर्मा, पृ॰ 31.

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

उन्होंने 'व' के स्थान पर सर्वत्र 'ब' का ही प्रयोग किया है। हिन्दी में तालव्य 'श' और मूर्धन्य 'ष' के उच्चारण में कोई अंतर नहीं है। प्रायः तालव्य 'श' का उच्चारण मूर्धन्य के समान होता है। अतः नाटककार ने तालव्य के स्थान पर मूर्धन्य 'ष' का ही प्रयोग किया है। यथाः 'शहर' के स्थान पर "षहर"।

संज्ञा के एक वचन रूप के साथ 'यां' अथवा 'आं' जोड़कर उसके बहुवचन रूप को सिद्ध किया गया है। स्वरांत और व्यंजनांत तथा स्त्रीलिंग और पुल्लिंग सभी के साथ इसी नियम का पालन किया है।

द्वितीय विभक्ति 'को' के स्थान पर 'कू' का प्रयोग सर्वत्र किया गया है। संप्रदान वाचक 'से' की जगह 'तै' का प्रयोग किया गया है।

उस युग के समस्त तेलुगु नाटकों में प्रायः पात्रोचित भाषा का प्रयोग न होकर क्लिष्ट एवं जटिल समासयुक्त भाषा का प्रयोग होता था। जिस प्रकार संस्कृत के नाटकों में उच्च पात्रों की तथा निम्न पात्रों की भाषा में अंतर प्रदर्शित किया जाता है। उस प्रकार के अंतर प्रदर्शन के लिए तेलुगु में कोई साधन उपलब्ध नहीं है। इस लिए तेलुगु नाटकों में यह भाषा भेद नहीं मिलता। पुरुषोत्तमजी को यह बात खलने लगी। उन्होंने अपने हिन्दुस्थानी नाटकों में पात्रोचित भाषा का प्रयोग कर एक नई पद्धति का मार्गदर्शन किया है। अपने नाटकों में उच्च तथा हिन्दू पात्रों के लिए संस्कृतगर्भित, सामान्य पात्रों के लिए तद्भव शब्दों से युक्त एवं मुस्लिम पात्रों के लिए उर्दू-फारसी शब्दों से युक्त भाषा का प्रयोग किया है। इसी परंपरा के विकसित रूप को हम आधुनिक नाटकों में देख रहे हैं। पात्रोचित भाषा के औचित्य पर लेखक के विचार उल्लेखनीय हैं :

"नाटकों में सभी पात्र एक भी भाषा बोलें, यह स्वाभाविक नहीं लगता। अतः मैंने हिन्दी एवं विद्वान पात्रों के लिए तत्सम-निष्ठ भाषा का, सामान्य

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

स्तर के पात्रों के लिए तद्भव शब्दों से युक्त भाषा का एवं सेवक और म्लेच्छ पात्रों के लिए उर्दू-फारसी शब्दों से युक्त भाषा का प्रयोग किया है[1]।

इसी पद्धति का निर्वाह उन्होंने अपने तेलुगु नाटकों में किया और इस प्रकार तेलुगु नाटक साहित्य के इतिहास में पात्रोचित भाषा का प्रयोग करने वालों में पुरुषोत्तम जी सर्वप्रथम हैं। इतना ही नही, तेलुगु में सर्वप्रथम केवल गद्य में, संपूर्ण नाटक की रचना करने का श्रेय भी इन्हीं को प्राप्त है। इस प्रकार तेलुगु नाटक साहित्य के इतिहास में भी श्री पुरुषोत्तम कवि का विशिष्ट स्थान है।

ऐसे समय में जब कि राष्ट्रीय स्तर पर हिन्दी के प्रसार की कोई कल्पना ही नहीं की गई थी, उस समय हिन्दीतर प्रांत के निवासी होते हुए और हिन्दीतर भाषा-भाषी होते हुए भी पुरुषोत्तमजी ने हिन्दीमें रचना कर जो अनन्य सेवा की है, वह सर्वथा स्तुत्य है। पुरुशोत्तम के हिन्दुस्यानी नाटकों से यह सिद्ध होता है कि मध्ययुग से ही हिन्दी, हिन्दुस्थानी अन्तः प्रांतीय व्यवहार की भाषा बनी हुई थी और हिन्दीतर प्रांतों में भी इस भाषा के समझने वालों की संख्या पर्याप्त मात्रा में थी, क्योंकि नाटक जन-साधारण के मनोरंजन के लिए जाते हैं। यह प्रमाणित हो चुका है कि पुरुषोत्तम जी के ये हिन्दुस्थानी नाटक दस-पंद्रह साल तक आंध्र के विभिन्न नगरों में प्रदर्शित होते रहे।

भाषा में प्रयोग दोषों के रहते हुए भी, आधुनिक हिन्दी व्यकरण की दृष्टि से त्रुटियों के होते हुए तथा कहीं-कहीं शब्द-विन्यास के आज की हिन्दी भाषा की प्रकृति के प्रतिकूल होने पर भी पुरुशोत्तम जी ने हिन्दुस्थानी में, एकाध नहीं बत्तीस नाटक लिखने का सराहनीय प्रयास किया है तया हिन्दी नाटक साहित्य की अभिवृद्धि में जो अपनी सेवाएँ अपित की हैं, वे स्तुत्य हैं ही, वरन् हिन्दीतर भाषियों के गौरव को बढ़ाने वाली भी हैं।

साहित्यकार की आभ्यंतरिक विचारधारा का व्यक्त रूप ही शैली कहलाता है। शैली के आधार पर ही लेखक के व्यक्तित्व का मूल्यांकन किया जा सकता

---

1. रामदास चरितमु की भूमिका।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

है। शैली को निर्धारित करने वाले तत्वों में पारिवारिक, सामाजिक एवं सांस्कृतिक परिस्थितियों का विशेष महत्व है जो कि साहित्यकार के व्यक्तित्व को संवारती हैं। इससे प्रत्येक लेखक की अपनी-अपनी विशिष्ट शैली का निर्माण हो जाता है। यह विशिष्टता इतनी सुस्पष्ट हो जाती हैं कि कोई रचना पढ़ते ही हमें तुरंत उनके लेखक का निश्चयात्मक ज्ञान हो जाता है।

नाटककार की, विशेष रूप से रंगमंचीय नाटककार की शैली दर्शकों की अभिरुचि, रंगमंचीय आवश्यकताओं तथा अभिनेताओं की योग्यता पर आधारित होती है। रंगमंचीय नाटककार को, जो अपने नाटकों की रंगमंचीय सफलता एवं लोकप्रियता का अभिलाषी होता है, उपर्युक्त तथ्यों के प्रति जागरूक रहना आवश्यक है।

पुरुषोत्तम कवि जी उस युग के नाटककार हैं, जब तेलुगु का अपना कोई विशिष्ट रंगमंच नहीं था। नवागत धारवाड़ नाटक कंपनियों के अनुकरण पर नाटकों की रचना प्रारंभ हो गई थी। पुरुषोत्तम जी ने भी धारवाड़ के नाटकों के अनुकरण पर ही अपने नाटक प्रस्तुत किए किंतु इसके साथ उन्होंने आंध्र के लोक-नाटकों की विशिष्ट पद्धतियों तथा संस्कृत नाटक की विशेषताओं का समन्वय कर एक नूतन प्रयोग भी किया। परंतु उसका ऊसर क्षेत्र में पड़े बीज के समान विकास न हो सका, क्योंकि हिन्दीतर भाषी प्रदेश में सामान्य जनता अपनी मातृभाषा में अभिनीत नाटकों में रुचि लेने लगी तथा नाटककार भी उसी ओर झुक गए। इसी कारण इस परंपरा का प्रचलन आंध्र प्रदेश में न हो पाया।

पुरुषोत्तमजी के नाटकों में सुदीर्घ कथोपकथन एवं बीच-बीच में लंबे भाषणों की आयोजना की गई है। उस युग की रंगमंचीय व्यवस्था के कारण जब ध्वनि विस्तारक यंत्रों का अभाव था। नाटकों में लंबे कथन तथा दीर्घ भाषण होते थे, जिनका मुख्य ध्येय लेखक के विचारों को श्रोताओं तक सुचारु रूप से पहुंचाकर उन्हें प्रभावित करना होता था। उस प्रारंभिक युग में नाटक-

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

कार आध्यात्मिक विषयों का विवरण देना आवश्यक समझता था। अतः नाटक के कथोपकथनों का दीर्घतर बन जाना स्वाभाविक ही है।

लोक नाटकों में गीतों का इतना महत्व एवं प्राचुर्य है कि उनका अस्तित्व गीतों पर ही निर्भर करता है। धारवाड़ के नाटकों में गद्य का ही अधिक प्रयोग होता था और बीच-बीच में गीतों का आयोजन भी किया जाता था। पुरुषोत्तम कवि ने गद्य के महत्व और औचित्य को समझ कर उसका समुचित प्रयोग किया है। लोक रुचि को ध्यान में रख कर गीतों को यथावश्यक स्थान दिया है। आज हमें केवल रामदास चरित्र नाटक के गीत ही उपलब्ध हैं। शेष नाटकों में प्रयुक्त गीत दुर्भाग्यवश उपलब्ध नहीं हैं। 'रामदास चरित्र' में प्राप्त गीतों और अन्य फुटकर भजनों में उत्कृष्ट तत्व भरे पड़े हैं। ये गीत भक्त हृदय के सूक्ष्म और गहन भावों को व्यक्त करते हैं।

पुरुषोत्तमजी पहले कवि हैं और बाद में नाटककार। अतः वे अपने नाटकों में वस्तु वर्णन करते समय संयम का पालन न कर सके। प्रकृति वर्णन में अधिकार वस्तु परिगणन की प्रवृत्ति सर्वत्र दृष्टिगोचर होती है। कहीं-कहीं विशेषणों की झड़ी-सी लगा देना उनकी स्वाभाविक प्रवृत्ति है।

नाटकों में अभिव्यक्त आध्यात्मिक विचार तथा स्थान-स्थान पर उद्धृत संस्कृत श्लोक या श्लोकांश आजकल हमें नितांत अस्वाभाविक से लगते हैं। पर युगीन जनरुचि के लिए वे आवश्यक थे। संस्कृत-प्रचुर और आडंबर-युक्त भाषा का प्रयोग कर लेखक अपने पांडित्य का प्रदर्शन करता था और जनता भी इसी में आनंद प्राप्त करती थी। लेकिन यह अवश्य हैं कि भाषा की जटिलता अथवा क्लिष्टता रसास्वादन में कोई बाधा उपस्थित नहीं करती थी।

–:0:–

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

परिशिष्ट

संदर्भ ग्रंथ

इकबाल अहम्मद : 1986 दक्खिनी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास, इलाहाबाद : लोक भारती प्रकाशन

कैलाशचंद्र भाटिया : 1973 भाषाभूगोल, लखनऊ : उत्तर प्रदेश हिन्दी संस्थान

गोपीचंद नारंग : 1962 मेराजुल आशकी, नई दिल्ली : आजाद किताब घर

गुलाम रब्बानी : 1967 उर्दू-पथ प्रदर्शक (रहनुमाए-उर्दू का हिन्दी अनुवाद) हैदराबाद : आन्ध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी

गेंदालाल : 1965 व्रजभाषा और खड़ो बोली के व्याकरण का तुलनात्मक अध्ययन, मेरठ : प्रकाशन प्रतिष्ठान

चन्द्रभान रावत : 1969 हिन्दी भाषा : विकास और विश्लेषण, आगरा : सरस्वती प्रकाशन मन्दिर

देवीसिंह चौहान : 1969 तारीखे इस्कन्दरी, पुणे : महाराष्ट्र राष्ट्र भाषा सभा

परमानंद पांचाल : 1971 हिन्दी के मुस्लिम साहित्यकार, दिल्ली : भारत भारती प्रकाशन

.... : 1978 दक्खिनी हिन्दी : विकास और इतिहास, दिल्ली : अलंकार प्रकाशन

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

.... : 1986 दक्खिनी हिन्दी की पारिभाषिक शब्दावली, दिल्ली : जयश्री प्रकाशन

भीमसेन निर्मल : 1969 तेलुगु भाषी हिन्दी नाटककार पं. पुरुषोत्तम कवि, लखनऊ : हिन्दी साहित्य भंडार

मुहम्मद कुंज मेत्तर, वो. पी· : 1988 दक्खिनी हिन्दी का सूफी साहित्य, इलाहाबाद : लोक भारती प्रकाशन

.... : 1955 ग़वासी, हैदराबाद : दक्खिनी साहित्य प्रकाशन समिति

राजकिशोर पाण्डेय और मोहम्मद अकबरुद्दीन सिद्दीकी : 1955 सैफल मुलुकु व बदीउज्जमाल, हैदराबाद : दक्खिनी हिन्दी प्रकाशन समिति

दशरथ राज : 1969 दक्खिनी हिन्दी का प्रेम गाथा काव्य, झाँसी : सुमित्रा-नंदन गुप्त सेतु प्रकाशन

... . : 1972 दक्खिनी साहित्य का इतिहास, आगरा : अपाला प्रकाशन

पद्मसिंह शर्मा : 1951 हिन्दी उर्दू और हिन्दुस्तानी, इलाहाबाद : हिन्दुस्तानी अकादमी

प्रभात : 1982 हिन्दी के विकास में महाराष्ट्र का योगदान, नागपुर : ज्ञानेश प्रकाशन

बाबूराम सक्सेना : 1965 दक्खिनी हिन्दी, इलाहाबाद : हिन्दुस्तानी अकादमी

राहुल सांकृत्यायन : 1959 दक्खिनी हिन्दी काव्य-धारा, पटना : बिहार राष्ट्रभाषा परिषद

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

श्रीराम शर्मा : 1954 दक्खिनी का पद्य और गद्य, हैदराबाद : हिन्दी प्रचार सभा

………… : 1955 सबरस (वजही), हैदराबाद : दक्खिनी प्रकाशन समिति

……… … … : 1964 दक्खिनी हिन्दी का उद्‌भव और विकास, प्रयाग : हिन्दी साहित्य सम्मेलन

………… : 1972 दक्खिनी हिन्दी का साहित्य, हैदराबाद : हिन्दी प्रचार सभा

………… और मुबारिजुद्दीन रफ़त : 1958 अली आदिलशाह का काव्य संग्रह, आगरा : हिन्दी तथा भाषाविज्ञान विद्यापीठ

विमला वाघ्रे और नसीरुद्दीन हाश्मी : 1954 कुतुब मुतशरी (वजही) हैदराबाद : दक्खिनी प्रकाशन समिति

शास्त्री ए. एम. ए. : 1984 आउट लाइन आफ इस्लामी कलचर, हैदराबाद : मकतबा हिजरी

सुरेशदत्त अवस्थी (सं.) : 1987 तारीख इस्कंदरी (मुल्ला नुसरती), हैदराबाद : आंध्र प्रदेश हिन्दी अकादमी

उर्दू

अब्दुल हक़ : 1953 कुतुब मुश्तरी (वजही), कराची : अंजुमने तरक्की-ए-उर्दू

………… : 1962 सबरस (मुल्ला वजही), पाकिस्तान : अंजुमने तरक्की-ए-उर्दू

अहम्मद आसिफ़ जाहि : 1979 अहदे उसमानी में उर्दू ख़िदमात, हैदराबाद : स्टूडेंट बुक हाउस

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अब्दुल कादरी सरवरी : 1357 (हिजरी) फूलवन, हैदराबाद : सिलसिला यूसूफिया अब्दुल सरवरी

.... : 1975 उर्दू मसनवी का इर्तेका, अलीगढ़ : एजूकेशनल बुक हाउस

अब्दुल मजीद सिद्दीकी : 1959 अलीनामा (नुसरती), हैदराबाद : सालार-जंग दकनी पब्लिशिंग कमेटी

अमीन : युसुफ जुलेखा, हैदराबाद : सालारजंग म्युज़ियम (पांडुलिपि)

ख्यूम सादक़ : दकनी अदव्, गुलवर्गा : कर्नाटक अदबी सर्कल

गुलाम उमर खाँ : 1965 मैना सतवन्ती, हैदराबाद : उर्दू विभाग उस्मा-निया विश्वविद्यालय

गुलाम याज़दानी : 1984 दक्खिनी की क़दीम तारीख़, नई दिल्ली : तरक्की उर्दू ब्यूरो

नसरीद्दीन हाश्मी : 1984 दक्खिनी हिन्दी और उर्दू, नई दिल्ली : तरक्की उर्दू ब्यूरो

.... : 1985 दकन में उर्दू, नई दिल्ली : तरक्की उर्दू ब्यूरो

मसऊद हुसेन खाँ : 1965 कदीम उर्दू, हैदराबाद : उर्दू विभाग, उस्मानिया विश्वविद्यालय

.... : 1988 मोकदम्मा तारीक़े ज़बान उर्दू, अलीगढ़ : एजु-केशनल बुक हाउस

महमूद खाँ शिरानी : 1949 पंजाब में उर्दू, लाहौर : उर्दू बाजार

मीर साअत अली रिजवी : 1357 (हिजरी) तूतीनामा (मुल्ला ग़वासी) हैदराबाद : मजलिस इशाअत दकनी, मखतूतात

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

मुहम्मद अब्दुल जब्बर खाँ मलकापुरी : 1329 (हिजरी) शुअरा–ए–दकन, हैदराबाद : मक्तबा–ए–रहमानी

मोहम्मद अली असर : 1987 दक्खिनी की तीन मसनवियाँ, हैदराबाद : दाईरा प्रेस

राम बाबू सक्सेना : 1952 तारीख–ए–अदब उर्दू, (मिर्जा अहम्मद अस्करी), लखनऊ : राजकुम.र प्रेस

वेद प्रकाश शास्त्री : 1982 दक्खिनी का गद्य साहित्य, वाराणसी : संजय बुक सेंटर

सैयद मुहिउद्दीन क़ादरी ज़ोर : 1940 कुलिल्यात–ए–मुहम्मद कुली कुतुबशाह, हैदराबाद : सालारजंग दकनी मखतूतात प्रकाशन

.... : 1989 दक्खिनी अदब की तारीख़, अलीगढ़ : एजुकेशनल बुक हाउस

.... : 1966 दक्खिनी रूबाइयाँ, हैदराबाद : आन्ध्र प्रदेश साहित्य अकादमी

.... : 1983 दक्खिनी नसर का इन्तेख़ाब, नई दिल्ली : तरक्की उर्दू ब्यूरो

.... : 1978 (1982) दकन के बहमनी सलातीन, नई दिल्ली : तरक्की उर्दू ब्यूरो

हासन खाँ शेरवानी : 1953 दी बहमनीज़ आफ दी दकन, हैदराबाद : सअद मंजिल

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

अंग्रेजी

GRIBBLE, J. D, B. : 1976 A History of the Deccan. London, : Lazac and Co.

GUMPERZ, JOHN J. AND ROMERY : 1963 Conversational Hindi Urdu. Berkely : Center for South Asia Studies

HASSAN, ALINADVI S. A. : 1976 Muslims in India. Lucknow : Academy of Islamic Research Publication

WAJHI MULLAH : 1932 SABRAS HAQ, MAULVI ABDUL (ed). Hyderabad : Anjuman-E-Taraqqia Urdu

KELLOGG S. H. : 1955 A Grammar of the Hindi Language. London : Routledge and Kegan Paul

SADIQ, MOHAMMAD : 1964 A History of Urdu Literature. London : Oxford University Press

SCHMIDT : RUTH LAILA : Dakhini Urdu. History and Structure, NewDelhi : Bahri Publications

SHASTRI, NEELKANTH : 1964 A History of South India. Bombay : OUP

SIDDIQI, ABDOL MAJID : 1956 A History of Golconda. Hyderabad : Literary Publications

SHERVANI, HAROON KHAN : 1955 The Bhumenil of the Deccan, Hyderabad : South Manzil

SRIVASTAV AAESHERWADI LAL : 1957 Moghul Empire, Agra : Shivlal Agarwal

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

संगोष्ठी के प्रतिभागी

डॉ. परमानंद पांचाल
232 ए, पाकेट 1, फेज 1,
मयूर विहार, दिल्ली–110091

डॉ. वेदप्रकाश शास्त्री
21-1-198, गांधी बाजार,
(उच्च न्यायालय के सामने)., हैदरावाद–500 004

डॉ. विमल मदान
5-9-42/ए, बशीरबाग, हैदराबाद–500 029

डॉ. सुरेशदत्त अवस्थी
3-4-435, वाई. एम. सी. ए.
चौराहा नारायण गुडा, हैदराबाद–500 029

डॉ. नूरजहाँ बेगम
रीडर, हिन्दी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय,
हैदरावाद–5000 134

प्रो. अशरफ रफी
उर्दू विभाग,
उस्मानिया विश्वविद्यालय,
हैदराबाद–500 007

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

डॉ. बालकिशन शर्मा 'रोहिताश्व'
रीडर, हिन्दी विभाग,
गोवा विश्वविद्यालय,
बाम्बोलीम, गोवा–403 005

प्रो. एस. आर. कुलकर्णी
सेवानिवृत्त प्रोफेसर, मराठी विभाग,
उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद

डॉ. अफ़ज़लुद्दीन इकबाल
उर्दू विभाग, पोस्ट ग्रेज्युएट कॉलेज,
बशीरबाग, हैदराबाद-500 001

डॉ. विजय राघव रेड्डी
रीडर, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान,
हैदराबाद–500 007

डॉ. शकुंतला रेड्डी
रीडर, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान,
हैदराबाद–500 007

प्रो. वै. वेंकटरमणा राव
अध्यक्ष, हिन्दी विभाग,
हैदराबाद विश्वविद्यालय, हैदराबाद–500 134

प्रो. भीमसेन निर्मल
1-1-405/7/1, गांधी नगर,
हैदराबाद–500 380

न्यायाधीश गोपालराव एकबोटे
पूर्व मुख्य न्यायाधीश,
आंध्र प्रदेश उच्च न्यायालय, हैदराबाद

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

डॉ. मोहनलाल निगम
निदेशक, सालरजंग संग्रहालय, हैदराबाद

श्री वेमूरि आंजनेय शर्मा
कुल सचिव, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,
द. भा. हिं. प्र. सभा, हैदराबाद

प्रो. सैयदा जाफ़र
अध्यक्ष, उर्दू विभाग,
उस्मानिया विश्वविद्यालय, हैदराबाद–500 007

प्रो. कृष्णकुमार शर्मा
प्रभारी, केन्द्रीय हिन्दी संस्थान
हैदराबाद–500 007

प्रो. राजकिशोर पांडेय
प्रधान मंत्री, हिन्दी प्रचार सभा,
नामपल्ली, हैदराबाद–500 001

डॉ. देवेन्द्र शुक्ल
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,
द. भा. हिं. प्र. सभा, हैदराबाद–500 004

डॉ. (श्रीमती) सरोज अग्रवाल
उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,
द. भा. हिं. प्र. सभा, हैदराबाद–500 004

प्रो. कृष्णकुमार गोस्वामी
अध्यक्ष, उच्च शिक्षा और शोध संस्थान,
द. भा. हिं. प्र. सभा, हैदराबाद–500 004

अन्य लेखक

डॉ. वी. पी. मुहम्मद कुंज मेत्तर
रीडर, पत्राचार पाठ्यक्रम संस्थान,
केरल विश्वविद्यालय, तिरुवनंतपुरम्-695581

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

प्रस्तुत पुस्तक 1989 में आयोजित संगोष्ठी में पढ़े गए आलेखों का संकलन है। इस में दक्खिनी भाषा के विभिन्न पक्षों का विवेचन करने के साथ-साथ उसमें लिखे गए विपुल साहित्य का भी अध्ययन किया गया है। इस साहित्य की विशेषता यह रही है कि इस में अधिकतर मुसलमान साहित्यकारों ने रचना की है लेकिन यह भारतीय तत्वों से ओत-प्रोत है। इस में राम, कृष्ण, गंगा, यमुना आदि अनेक शब्द पौराणिक महत्व को अक्षुण्ण बनाए हुए है। इस पुस्तक में दक्खिनी भाषा के परिचित पक्षों का पुनर्मूल्यांकन किया गया है और अपरिचित पक्षों को उद्घाटित करने का प्रयास किया गया गया है।

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji

CC.0 Digitized by Arya Samaj Foundation, Chennai and eGangotri

उच्च शिक्षा और शोध संस्थान के प्रकाशन

1.	हिन्दी भाषा की सामाजिक भूमिका डॉ. भोलानाथ तिवारी और मुकुल प्रियदर्शिनी	25-00
	" " विद्यार्थी संस्करण	12-00
2.	तुलनात्मक साहित्य की भूमिका डॉ. इन्द्रनाथ चौधुरी	40-00
	" " विद्यार्थी संस्करण	25-00
3.	व्यावसायिक हिन्दी डॉ. दिलीप सिंह	20-00
	" " विद्यार्थी संस्करण	8-00
4.	अनुवाद अवधारणा और अनुप्रयोग संपादक : डॉ. चन्द्रभान रावत और डॉ. दिलीप सिंह	50-00
5.	शैलीतत्व : सिद्धांत और व्यवहार संपादक : डॉ. चन्द्रभान रावत और डॉ. दिलीप सिंह	75-00
6.	कोश विज्ञान सिद्धांत एवं प्रयोग डॉ. राम अधार सिंह	75-00
7	जयशंकर : मूल्यांकन और मूल्यांकन संपादक : डॉ. कृष्णकुमार गोस्वामी	75-00

Vidya Niwas Mishra Collection, Varanasi. Courtesy. Dayanidhi Mishra ji